ठाकुर देवदमन श्रीनाथजी

(मूर्ति-कलाकी दृष्टिसे श्रीनाथजीकी प्राचीनता)

प्रत्युष महर्षि

प्रकाशक : श्रीवल्लभ विद्यापीठ श्रीविठ्ठलेशप्रभुचरणाश्रम ट्रस्ट
वैभव को-ओपरेटिव सोसाइटी
पुणे-बेंगलोर रोड कोल्हापुर
महाराष्ट्र ४१६००८

लेखक : प्रत्युष महर्षि

प्रथमसंस्करण : वि. सं. २०८२

प्रति : ५००

निःशुल्क वितरणार्थ : मुंबई विश्वविद्यालयके फिलोसोफी डिपार्टमेन्ट और वल्लभ वेदान्त एकेडेमी एंड रिसर्च सेंटरके लिए श्रीवल्लभ विद्यापीठ श्रीविठ्ठलेशप्रभुचरणाश्रम ट्रस्ट कोल्हापुर द्वारा प्रकाशित

प्राप्ति स्थल : १. सुखधाम, शंकर लेन, एस.वी.रोड, कांदिवली (पश्चिम), मुंबई -67 मो. 9320787642

२. श्रीवल्लभ विद्यापीठ हलोल , 26 वल्लभाचार्य नगर, बी/एच रेफ़रल हॉस्पिटल, हलोल, गुजरात 389350

फो. 02676 225 171

३. अतुल्य शर्मा, 17-ए शास्त्री नगर, निजामपुरा,

वड़ोदरा-390002 मो. 9727718459

मुद्रक : मेट्रो प्रिंटर्स,खटोदरा,सुरत

आमुख

[श्रीनाथस्य विग्रहस्य नामानि विविधानि वै, नागदमनेन्द्रदमनश्रीदेवदमन-स्तथा. गिरिधरो गोपालश्च गोवर्धननाथो व्रजे. एवमादिषु सर्वेषु श्रीनाधस्त्वतिविश्रुतः. "तिरुवेंकटेशुनकु... श्रीवल्लभकु दण्डमया" इत्याचार्यैः स्तुतौ ततः 'तिरु' श्रीवाचको ज्ञेयो 'नाथः 'पत्यर्थकः पुनः, यतस्तिरुपतिरासीद् आचार्यकुलदेवता श्रीपरिवृढतया भक्त्या व्रजेऽप्याचार्यसं-स्तुतः।]

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यने अपने 'परिवृढाष्टक' तथा 'गिरिराजधार्यष्टक' नामक स्तोत्रग्रन्थोंमें

स्फुरद्गुञ्जापुञ्जाकलितनिजपादाब्जविलुठत्स्रजि
श्यामाकामास्पदपदयुगे मेचकरुचिः। वरांगे शृंगारं दधति शिखिनां
पिच्छपटलै रतिप्रादुभार्वो भवतु सततं श्रीपरिवृढे" (श्रीपरि.७)

"व्रजेन्द्रसर्वाधिशर्मकारी महेन्द्रगर्वाधिकगर्वहारी वृंदावने
कन्दफलोपहारी मम प्रभुः श्रीगिरिराजधारी" (गिरिराज.६).

ऐसे निरूपण द्वारा श्रीनाथजीके स्वरूपके बारेमें निज हृदयगत भावोंको बरबस प्रकट कर दिया है. यहां 'श्यामाकामास्पदपदयुगे... श्रीपरिवृढे रतिप्रादुर्भावो' पदोंका अनुसन्धान करनेपर, महाप्रभुके प्रति सद्भावशील केवलाद्वैतवादके प्रखर विद्वान समादरणीय श्रीमधुसूदन सरस्वतीके द्वारा प्रकट **"भक्तेरेव फलत्वम् उत्तमरसाविष्टाविशेषेण ये पुष्टिस्थाः प्रवदन्ति तत् पदयुगं चित्ते सदा आस्तां मम"** (आनन्दमन्दा.५८), साथ ही साथ चैतन्य सम्प्रदायके अविद्वेषी अप्रतिस्पर्धाशील कृष्णभक्तिशील श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तकि द्वारा प्रकट **"प्रकटितनिज-शक्त्या**

वल्लभाचार्यभक्त्या स्फुरतु हृदि सएव श्रीगोपालदेवः" (श्रीगोपा.स्तो. ७) अर्थात् इन दोनों इतरसम्प्रदायके धुरन्धर विद्वान् भक्तमहानुभावोंके उद्गार अविस्मरणीय बन जाते हैं.

यहां यह नहीं भूलना चाहिये कि महाप्रभुके पुष्टिभक्तिमार्गीय सिद्धान्तके अनुसार पुष्टिभक्तिमार्गीय आत्मनिवेदन दीक्षासे आरम्भकर पुष्टिभक्तिमार्गीय भगवत्सेवा तथा अंगभावेन; अथवा असामर्थ्यवश विकल्पभावेन भी, भक्तिशास्त्रोक्त साधनरूपा नवधा भक्ति तथा फलरूपा प्रेमलक्षणा मर्यादाभक्ति के, भी पुष्टिभक्तिमें उन्नयनार्थ निजगृहमें पारिवारिक निजजनोंके सहयोग द्वारा निजतन निजधन का भगवत्सेवार्थ विनियोजनरूप, सो भी निजभक्तिभावोंके गार्हस्थ्यादि धर्मोंकी आड़में भावसंगोपनके साथ, अनुष्ठान विकल्पवर्जित अनिवार्य नियम ही है.

सार्वजनिक देवालयमें जनताके द्रव्यका जनपुरोहितरूप सेवकोंके देहसे भगवदाराधन तो पुष्टिभक्तिके स्वभावसे सर्वथा विपरीत ही है. यह तो अनेकानेक प्रक्षेपवश संदिग्ध वार्तासाहित्य (द्रष्ट. पुष्टिभक्तिका व्यापारीकरण. पृ.९९)के भी आधारपर "हमारे ठाकुरको मन्दिर सिखरबंद धुजा-कलसको नहीं नन्दरायजीके घरके नाँई करो... सो देवालयकी रीति यहां (पुष्टिसम्प्रदायमें नहीं प्रत्युत अपवादरूपेण श्रीजीद्वारमें केवल) राखनी उचित है" (८४ वैष्णववार्ता २४।१-७३।१).

ऐसी निजगृहमें निजपरिवारके आराध्य स्वरूपकी भक्तिका निर्वहन जिनसे शक्य न हो उनके लिये स्वयं महाप्रभुद्वारा यह वैकल्पिक व्यवस्था भी उपदिष्ट है :

तत्र प्रथमं भक्तिमार्गप्रवेशाय साधनानि आह - श्रद्धां भागवते शास्त्रे. अनिन्दाम् अन्यत्र चापि हि. मनोवाक्कायदण्डं च सत्यं शमदमावपि -प्रथमतः प्रमाणे महति श्रद्धा ततो विरुद्धानाम् अस्मरणमपि, स्मरणं निन्दाद्वारा हि सम्भवति, सापि न कर्तव्या. न युक्तयो अनुसन्धेया किन्तु श्रद्धैव... सत्यं

भगवन्मार्गे परमं साधनं, भगवन्निष्ठा बुद्धिः शमः, इन्द्रियनिग्रहो दमः वाङ्मनः -कायानां वा गुणाः उच्यन्ते, प्रथमसाधनानि आह - श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेः अद्भुतकर्मणः जन्मकर्मगुणानां च तदर्थे अखिलचेष्टितं - प्रेमसाधनं श्रवणादित्रयं पूर्वम् उक्तम्, अद्भुतकर्मणः इति विशेषः; शुद्धलीलासहितो न दशविधलीलासहितो... कियत्कालसेवया परिचये जाते आत्मसमर्पणं कर्तव्यम् इति आह- (पारलौकिकं) इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं, यच्चात्मनः प्रियं, (लौकिकं) 'दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै (भगवते कृष्णाय) निवेदनं - वृत्तं सदाचारः आत्मनः प्रियं प्रवाहो दारादीनां स्वतुल्यत्वात्... एवं विधानपूर्वकम् आत्मनिवेदनं कृत्वा तादृशैः सह भगवत्परिचर्या कर्तव्या... लौकिकस्य अनर्थस्य लौकिकैरेव निवत्तिः युक्तेति सांख्यादयः सिद्धान्ताः प्रवृत्ताः, तत्रापि शीघ्रहृदयग्रन्थिविभेदको वैष्णवः. परात्मनो विधिना न विभूत्यादिभजनप्रकारेण केवलपुष्टिमार्गेण... तत्र अशक्तौ तन्त्रोक्तप्रकारेणापि कृष्णमेव भजेत्. अथवा समुच्चयो मर्यादया. उभयथापि पुष्टिमार्गस्थितत्वात् केशवमेव भजेत्.

(सुबो.११।३।२६-४७).

यह तो भागवतव्याख्याके रूपमें मिलता विवेचन है, अन्यथा स्वमतेन इसी भागवतांशके संक्षिप्तसारतया सर्वनिर्णय निबन्धकी २२७से प्रारम्भ कर २५२ सप्रकाशकारिकोंमें भगवत्स्वरूपकी बाह्याभ्यन्तर सेवाभक्ति और कथाभक्ति के प्रतिपादनके बाद **"प्रपत्तिमार्गम् आह - जगन्नाथे विट्ठले च श्रीरंगे वेंकटे तथा यत्र पूजाप्रवाहः स्यात् तत्र तिष्ठेत तत्परः- जगन्नाथे विट्ठले च - इति विकल्पएव एषां स्थानानाम्"** (त.दी. नि.प्र.२।२५६) और भक्तिवर्धिनीमें भी **"बीजदार्ढ्यप्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः... त्यागे बाधकभूयस्त्वं दुःसंसर्गात् तथा अन्नतो अतः स्थेयं हरिस्थाने तदीयैः सह तत्परैः"** (भक्तिव. २-८) में महाप्रभुने पुष्टिभक्तिके अनुष्ठानमें असमर्थ होनेकी स्थितिमें तन्त्रोक्त देवालयमें भजनकी अनुज्ञा प्रदान की ही है. वर्तमानमें जिस तरहसे मर्यादामार्गीय देवालय और वहाँ बिराजमान भगवत्स्वरूपमें परायेपन की बिभीषिका पनपायी गई है वह सैद्धान्तिक होती तो श्रीनाथजीके स्वरूपके दक्षिण भागमें करचरणार्विन्दोंमें

मर्यादामार्गीय तथा पीठिकाके दक्षिण पार्श्वमें मर्यादामार्गीय भक्त और मुक्त जीवों की उपस्थिति भोगसमर्पणके समय भी ढाँपी क्यों नहीं जाती?

इस अनुज्ञप्त परार्थ देवालयमें भजनकी प्रणालीका स्वकीय गृहोंमें स्वार्थ आराध्य प्रभुकी परद्रव्यसे स्वपरविवेकरहित हो कर परार्थ भजनप्रकार शुद्ध लाभपूजापरायण होना है. यह नग्नताण्डव जो सम्प्रदायमें चल रहा है, उसका महाप्रभुके मत या सिद्धान्त के साथ स्नानसूतकका भी सम्बन्ध नहीं है. फिरभी मर्यादामार्गीय भगवद्विग्रहोंको स्वमार्गीय भाषासाहित्यमें अवरकोटिके पुरुषोत्तमतया निरूपित करना व्यावसायिक असूयातिरेकके सिवा अन्य कुछ भी नहीं है. प्रभुचरणके पौत्र श्रीकल्याणरायजीके निजहस्ताक्षरोंमें आलेखित पत्रमें, अतएव सुस्पष्ट शब्दोंमें "*आगे श्रीगोवर्धननाथजुको देवलो सो श्रीवल्लभाचार्यको स्थापि. तहां वे पूजा (तुलनीय* ***"जगन्नाथे विट्ठले... यत्र पूजाप्रवाहः"****) करते. ता पाछे उनके बेटा श्रीविठ्ठलेश्वर दीक्षित पूजा करते ता पाछे विट्ठलेशके बेटा गिरिधरजु गोविन्दजु बालकृष्णजी गोकुलनाथजु यदुनाथजु घनश्यामजु ये सब पूजा करते. वल्लभाचार्यतें आरंभि करि इनमेंते किनने हु अधिकार कियो नाहि. एक मनुष्य राखते सो अधिकार करतो. ऊहांकी कछु वस्तु लेनी नहीं हमारी प्राचीन रीति यह है. ता पाछे दामोदर करत हुते अब विट्ठलराय करत हैं'* (पुष्टिभ. व्यापा.११८).

वैसे साम्प्रदायिक वार्ताओंमें इसे छिपा लिया गया परन्तु हकीकत एक यह भी है कि पौष्करसंहिताका एक **"गिरौ गोवर्धनाख्येतु देवः सर्वेश्वरो हरिः संस्थितः पूजिते स्थाने गवां निष्क्रमणेषु च"** (३६।२९५-३३४) यह वचन सुस्पष्ट शब्दोंमें महाप्रभुसे पहले भी यह तांत्रिक देवालयकी पुष्टि करता ही है. पौष्करसंहिताका प्रामाण्य तो श्रीवेदान्त देशिक (ई.स.१२६८-१३६९) के पाञ्चरात्ररक्षामें स्वीकृतिवश निःसन्दिग्ध ही है. ८४ वैष्णववार्ता. ७३।१ में श्रीनाथजीके विग्रहके पुनः प्राकट्यकी इसी तरहकी कथा दोहरायी गयी है.

यद्यपि महाप्रभु तो किसी भी तरहकी भेददृष्टि पुष्टिमार्गीय भगवत्स्वरूप और मर्यादामार्गीय भगवत्स्वरूप में स्वीकारते होते तो **“सर्वकर्मसु मंगलाचरणमिव अनुवृत्त्या अच्युतांघ्रिभजनं जगन्नाथादिस्थानेषु मध्ये-मध्ये कर्तव्यम्’** (सुबो.११।२।४२-४३) आज्ञा नहीं करते, स्वयं आपके पांच बार जगन्नाथपुरीके यात्रावृत्तान्त मादलपंजिकाके आधारपर उपलब्ध होते हैं, क्या महाप्रभु वहां अन्याश्रय करने पधारते थे ? अब किन्तु साम्प्रदायिक असूयावश तान्त्रिक देवालयोंमें जाना अन्याश्रय अपराध घोषित कर दिया गया है.

प्रायः ऐसा दिखलायी देता है कि सभी धर्मसम्प्रदायोंमें मानवमात्रके लिये ईर्ष्या असूया आदि मनोविकार दोषरूपतया निन्दित किये गये हैं. फिरभी साम्प्रदायिक पारस्परिक असूयाको अपनी स्वधर्मनिष्ठाका उत्तम परिपाक स्वीकारा जाता है. इस महान् वदतोव्याघातको लज्जाजनक भी नहीं माना जाता !

यह कथा अपने सम्प्रदायकी ही नहीं प्रत्युत सभी धर्मसम्प्रदायोंकी है. यही कारण है कि ऐसे असूयातिरेकवश कतिपय विदग्धजन कभी इस महाप्रभुद्वारा पुनः प्रकटित भगवद्विग्रहको अपने ही सम्प्रदायका दिखलाते हैं. तो कभी देवीका विग्रह, तो कभी यक्षका, तो कभी भैरवका विग्रह मानकर वाल्लभ सम्प्रदायकी निन्दा करते रहते हैं. और वह शक्य न होनेपर श्रुति-स्मृति-पुराण-तन्त्रोक्त मूर्तिपूजाके ही निन्दनीय अप्रामाणिकताके गीत गाने लग जाते हैं!

ऐसी इन सभी धार्मिक/साम्प्रदायिक असूयातिरेकवश प्रचारित निर्मूल धारणाओंकी समीक्षा हमारे प्रिय श्रीप्रत्यूष महर्षिने अतीव धैर्य एवं परिश्रम के साथ परिपूर्ण गवेषणाके साथ इस ग्रन्थमें प्रस्तुत की है. यह वल्लभ-वेदान्तके भी अध्येताओंके लिये अतीव अध्येतव्य ग्रन्थ होनेसे इसे वल्लभ-वेदान्तके तीनों वर्षोंके लिये एक सन्दर्भ ग्रन्थके रूपमें प्रकाशित करना हमारे लिये कृतज्ञतापूर्वक बहोत गौरवका विषय लगता है. इससे अध्ययनार्थिओंको ढेर सारी मिथ्याधारणाओंसे मुक्ति मिलेगी ऐसा पूर्ण

विश्वास है. यह उत्तम गवेषणात्मक ग्रन्थ हमारे न्यास श्रीवल्लभविद्यापीठ-श्रीविठ्ठलेश प्रभुचरण आ.हो. न्यासद्वारा अध्ययनार्थ निःशुल्क वितरणार्थ प्रकाशित किया जा रहा है. सभी सहयोग प्रदानकर्ताओंके प्रति सधन्यवाद.

अन्तमें स्वयं महाप्रभुके शब्दोंमें श्रीपरिवृढ प्रभुके चरणकमलोंमें **“दुरन्तं दुःखाब्धिं हसितसुधया शोषयति यो यदास्येन्दुः गोपीनयननलिनानन्दकरणम्। अनंगः सांगत्वं व्रजति मम तस्मिन् मुररिपौ रतिप्रादुर्भावो भवतु सततं श्रीपरिवृढे”** (परिवृ.स्तो.८) ऐसे महाप्रभुके मनोरथके उत्तराधिकाररूप मनोरथके साथ...

१३ अगस्त २०२५

गोस्वामी श्याम मनोहर

मुंबई

भूमिका

आजसे लगभग दस वर्ष पूर्व सन् 2013में जब मैं श्रीश्यामबावासे (गोस्वामी श्रीश्याममनोहर दीक्षितजी) प्रथम बार मिला था तब मेरे कई प्रश्नोंमेंसे एक प्रश्न चैतन्य चरितामृतमें आते इतिहास विरोधी प्रसंगों पर था, जो विशेषकर महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके प्रति अपराधपूर्ण एवं द्वेषपूर्ण दृष्टिसे लिखे गए हैं. साथ ही श्रीनाथजीके प्राकट्य आदिको भी विपरीत रूपसे प्रस्तुत करते हैं जो चैतन्य भागवत ग्रंथके भी विपरीत हैं. इसपर आपश्रीने उस समय एक विस्तृत लेख लिखनेकी जो आज्ञा की थी, वह आपश्रीकी कृपासे लगभग 300 पृष्ठ की पुस्तकके रूपमें पूर्ण हुई - **“ठाकुर देवदमन श्रीनाथजी: इतिहास, प्राकट्य एवं साम्प्रदायिक विमर्श”.**

उक्त पुस्तकके प्रथम भागमें ऐतिहासिक साक्ष्योंके परिपेक्ष्यमें वार्ता साहित्य तथा बंगाली ग्रन्थोंका तुलनात्मक अध्ययन सहित आलोचनात्मक समीक्षा की गई है तथा कुछ साम्प्रदायिक भ्रमणाओं एवं कुशंकाओं का समाधान किया गया है. श्रीनाथजीके प्राकट्य संबंधी जिज्ञासा विस्तृत होते होते श्रीनाथजीकी प्राचीनता तदनंतर उत्तर गुप्त कालीन-गुप्त कालीन-कुषाण कालीन-शुंग कालीन- मौर्यकालीन- तथा मौर्य पूर्व काल की मूर्तिकला, वेदों तथा वैदिक साहित्यमें मूर्तिपूजा तथा भक्तिमार्गके अस्तित्व तक विस्तृत हुई जिसे लेखके दूसरे भागमें रखा गया जिसमें मूर्तिकलाकी दृष्टिसे श्रीनाथजीके विग्रहकी प्राचीनता पर विचार किया गया है.

कतिपय तथाकथित इतिहासकार यह आक्षेप करते हैं कि वेदोंमें मूर्तिपूजा नहीं है तथा जैन-बौद्धोंकी देखादेखी कर ब्राह्मणोंने पुराण रचनाकर मूर्तिपूजाको अपनाया. यह दृष्टिकोण मूल रूपसे 19वीं शताब्दीमें भारतमें अंग्रेजी राजके अंतर्गत सुनियोजित शिक्षण पद्धतिका परिणाम था जिसका उद्देश्य भारतमें अंग्रेजोंके प्रति

वफादार वर्गका निर्माण करना था. इस शिक्षण अर्थात दुष्प्रचारसे प्रभावितहो तथाकथित समाज सुधारकोंकी बाढ़ सी आ गई जिन्हें हर भारतीय हिंदू परंपरा मात्र कुरीतिही दिखती थी. इन्हें अंग्रेजोंका धर्म, विचार तथा समाजही श्रेष्ठ प्रतीत होता था. अंग्रेजों द्वारा फैलाए गए असत्य तथा कौभाण्ड इन समाज सुधारकोंने यथावत् स्वीकार कर सत्यके रूपमें प्रसारित कर समाजको गर्तमें ढकेलनेका कार्य किया, जैसा कि अंग्रेजोंको भी अभीष्ट था. यथा वेदोंमें मूर्तिपूजा नहीं है, मूर्तिपूजा ब्राह्मणों द्वारा चलाया गया पाखंड है, मूर्तिपूजा गुप्तकालमें प्रारंभ हुई, हिंदूधर्म वैदिक नहीं रह गया है, इत्यादि. हां, अवैदिक होनेका आरोप भी इन तथाकथित समाज सुधारकोंने उन ब्राह्मणों पर ही लगाया जिन्होंने गत 3000 वर्ष ईसा पूर्वसे वेदोंके संरक्षणका कार्य किया.

अब्राहमिक धर्मोंसे प्रभावित होनेके कारण इन्होंने वेदोंको भी आसमानी किताबोंके तुल्य एक किताब सिद्ध करनेकी भरपूर चेष्टा की. वेदोंके मंत्रोंका अपनी शाखाके अनुसार सस्वर पाठ किये जानेके स्थान पर मात्र अपने किए गए भाषानुवादको ही सच्चा वेद बताया. इन समाज सुधारकोंका ईश्वर अवतार ग्रहण कर पृथ्वी पर प्रकट होनेमें असमर्थ था, मूर्ति द्वारा पूजा स्वीकारनेमें असमर्थ था, भक्त द्वारा प्रेमपूर्वक अर्पण किए गए भोग नैवेद्यको स्वीकार करनेमें असमर्थ था और इस कारण सभी पूजा, उपवास, व्रत, त्यौहार, उत्सव आदि निरर्थक पाखंड मात्र थे. स्वामी दयानंद प्रभृति तथाकथित समाज सुधारकोंने अंग्रेजों द्वारा बताई गई इन सभी बातोंको परमसत्यके रूपमें समाजमें फैलाया. लेखके दूसरे भागमें इस प्रकारके आक्षेपोंका खंडन कर भारतीय सनातन वैदिक धर्मका पारंपरिक दृष्टिकोण प्रकट किया गया है जो कई एतिहासिक प्रमाणों तथा स्वयं वैदिक शास्त्रोंसे भी पुष्ट होता है. इसी कड़ीमें श्रीनाथजीके विग्रहको कुछ इतिहासकार नाग अथवा भैरव/यक्षका विग्रह बतानेकी चेष्टा करते हैं, जिसे श्रीवल्लभाचार्यने कृष्णके रूपमें स्थापित कर दिया.

किंतु मूर्तिकलाकी दृष्टिसे तथा शास्त्रीय वर्णनसे ये बात स्वतः आधारहीन सिद्ध हो जाती है जैसा कि लेखके द्वितीयभागमें सिद्ध किया गया है. पूज्य गोस्वामी श्रीश्याममनोहर दीक्षितजीनें उक्त लेखके द्वितीय भागको मुंबई

यूनिवर्सिटीमें वल्लभ वेदांतके अध्येताओं हेतु एक उपयोगी लेख कह इसके पुनर्प्रकाशनकी आज्ञा करी, जो इस पुस्तकके रूपमें सामने है. आपश्री द्वारा ऐसी अहैतुकी कृपाके प्रति कृतज्ञता तथा आभारको लेखक शब्दोंमें व्यक्त करनेमें असमर्थ है.

अंतमें प्रमुख घटनाओंका एक प्रामाणिक कालानुक्रम प्रस्तुत किया गया है. मूल पुस्तकमें यह कालानुक्रम श्रीनाथजीके प्राकट्यसे लेकर महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजीकी आसुर व्यामोह लीला तक दिया गया था जिसे इस प्रस्तुत पुस्तकमें और विस्तृत करते हुए संदर्भ ग्रंथों सहित दिया जा रहा है तथा साथ ही गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी प्रभुचरणके लीलाप्रवेश तक सभी प्रमुख घटनाओंके संवत् को जोड़ा गया है. इसमें एक विशेष उपलब्धि बंगालियोंको श्रीनाथजीकी सेवासे हटाए जानेके संवत् का ज्ञात होना रही. चौरासी वैष्णव वार्ता जो आज भी गोस्वामी श्रीगोकुलनाथजीके समय की प्राप्त होती है, के अनुसार बंगालियोंको श्रीविट्ठलनाथजी प्रभुचरणकी आज्ञासे श्रीकृष्णदास अधिकारीजीने श्रीनाथजीका देवद्रव्य चोरी कर निजी उपयोगमें लेने के कारण हटाया था. श्रीकृष्णदास अधिकारीकी वार्तामें अकबर, बीरबल, टोडरमल तथा रूप गोस्वामी व सनातन गोस्वामीका भी उल्लेख आता है. अकबरका राज सन् 1556 ईस्वी से प्रारंभ हुआ था एवं सनातन गोस्वामीका तिरोधन सन् 1558 ईस्वी में हुआ था. बीरबल भी इसी बीच, लगभग 1557ईस्वी में, अकबरके दरबारमें सम्मिलित हुआ था. अतः इसके बीच ही अर्थात सन् 1558 ईस्वी में बंगालियोंको हटाया गया. यह श्रीमहाप्रभुजीकी आसुर व्यामोह लीलासे लगभग तीस वर्ष बाद हुआ. श्रीनाथजीकी प्राकट्य वार्तामें यह घटना, “तीस वर्ष”के स्थान पर “तीन वर्ष” बाद हुई ऐसा लिख दिया गया है जो, ग्रंथमें “स” अक्षरकी शाहीके हट जाने अथवा अवधानतावश लिपिकार द्वारा की गई एक स्वाभाविक त्रुटि है. क्योंकि 1533ईस्वी में अकबर बीरबल अथवा टोडरमलका कोई अस्तित्व था ही नहीं. साथ ही श्रीगोपीनाथजी प्रभुचरण द्वारा 1538ईस्वी में जगन्नाथ पुरीमें लिखित वृत्तिपत्र भी इसे पुष्ट करता है क्योंकि बंगालियोंको हटानेकी घटनाके बाद ही श्रीगोपीनाथजीका

लीलाप्रवेश हुआ था. अतः इस घटनाका वर्ष 1558 ई सिद्ध हो जानेसे श्रीगोपीनाथजीके लीला प्रवेशका, संप्रदाय कल्पद्रुम ग्रंथमें वर्णित संवत् 1620 विक्रमी अर्थात 1563ईस्वी सत्य सिद्ध होता है. इस विषयमें श्रीशरद गोस्वामी (मांडवी-हालोल) द्वारा श्रीगोपीनाथजी प्रभुचरण पर लिखे विद्वत्तापूर्ण लेखसे अतीव सहायता प्राप्त हुई. आशा है ठाकुर श्रीनाथजी व महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के आपसी संबंधको ऐतिहासिक सत्यता व तथ्यके साथ यह निबंध सिद्ध करेगा.

प्रत्युष महर्षि

आभार

प्रस्तुत लेख ठाकुर देवदमन श्रीनाथजी: इतिहास, प्राकट्य एवं साम्प्रदायिक विमर्श हेतु प्रेरणा तथा विषयका श्रेय एकमात्र पूज्य गोस्वामी श्रीश्याममनोहरजीको ही जाता है, जो अत्यंत सौभाग्यवश मेरे गुरु भी हैं. पूज्य गोस्वामी श्रीश्याममनोहर दीक्षितजीनें उक्त लेखके द्वितीय भागको मुंबई यूनिवर्सिटीमें वल्लभ वेदांतके अध्येताओं हेतु एक उपयोगी लेख कह इसके पुनर्प्रकाशनकी आज्ञा करी, जो इस पुस्तकके रूपमें सामने है. आपश्री द्वारा ऐसी अहैतुकीकृपाके प्रति कृतज्ञता तथा आभारको लेखक शब्दोंमें व्यक्त करनेमें असमर्थ है. इस हेतु बीते वर्षोंमें मूर्तिकला विषयक अथवा यक्ष पूजा विषयक जो भी शोध किया गया उसकी दिशा भी आपश्रीने कई बार फोन पर कई घंटे चर्चा कर मेरे प्रश्नोंका समाधान कर निर्धारितकी है. यह मेरे ऊपर उनकी अहैतुकी कृपा ही है जो कि पुनश्च शब्दोंमें अंकित की नहीं जा सकती. इस हेतु मेरे मित्र उत्कर्ष शर्माका भी अतुलनीय योगदान रहा.

यहाँ अपने माता-पिता श्रीमती मालती एवं श्रीविजयकुमारजी महर्षि तथा पत्नी श्रीमति वल्लरी महर्षिका उल्लेख करना भी अनिवार्य है, जिनकी प्रेरणा, मनोबल और प्रोत्साहनके बिना यह कार्य कभी संभव नहीं हो पाता.

इस शोध ग्रंथ हेतु शुभाशीषके लिए श्रीवल्लभ कुलके अन्य सभी गोस्वामी गणोंका बहुत आभार विशेषकर श्रीशरद गोस्वामी, श्रीवागधीश गोस्वामी, श्रीव्रजोत्सव गोस्वामी, गोस्वामी श्रीगोविंदरायजी, श्रीयोगेश गोस्वामी (वड़ोदरा), गोस्वामी श्रीद्वारकेशलालजी (षष्ठपीठ वडोदरा), श्रीआश्रय गोस्वामीजी, श्रीशरणम

गोस्वामीजी जिन्होंने व्यक्तिगत रूपसे इस कार्य हेतु आशीष प्रदान किया. इस पुस्तकको जल्दी पूरा करने हेतु मुझे बार-बार प्रोत्साहित करनेका श्रेय पूर्ण रूपसे श्रीअतुल्य शर्माजीको जाता है. पुनः श्रीअतुल्य शर्माजीका मैं हृदयसे आभारी हूँ जिन्होंने इस लेखको टाइप कर एक पुस्तकका रूप दिया.

अद्यापि अस्मिन् दारुणे कलियुगे महाप्रभूणां श्रीमद्वल्लभाचार्यायाणां श्रीविट्ठलनाथप्रभूणाञ्च चरणकमलदृढ़ानुयायिनः विदिताखिलशास्त्रसुधाजलधयः करुणाकराः भक्तवत्सलाः गोस्वामिगणवरिष्ठाः श्रीश्याममनोहरदीक्षिताः। तेषां चरणारविन्दयोः मम एषा कृतिः विनयपूर्वकमर्प्यते।

- प्रत्युष महर्षि

अनुक्रमणिका

मूर्ति-कलाकी दृष्टिसे श्रीनाथजीकी प्राचीनता

1.	वैदिक तथा पौराणिक भक्ति एवं मूर्तिपूजा तथा वैष्णव संप्रदाय	1
2.	वैदिक-साहित्य मूर्तिपूजाका समर्थक अथवा विरोधी	17
3.	शैव भक्तिमार्गीय मूर्तिपूजाकी प्राचीनताका ऐतिहासिक प्रमाण	27
4.	यक्ष एवं नागोंकी मूर्ति-पूजा	29
5.	वैष्णव भक्तिमार्गीय मूर्ति-पूजाकी प्राचीनताका ऐतिहासिक प्रमाण	45

प्रामाणिक कालानुक्रम 75

संदर्भग्रंथ सूची 113

मूर्तिकलाकी दृष्टिसे

श्रीनाथजीकी

प्राचीनता

1. वैदिक तथा पौराणिक भक्ति एवं मूर्तिपूजा तथा वैष्णव संप्रदाय

भारतमें मूर्ति-पूजाका प्रारंभ भक्तिमार्ग द्वारा ईश्वरकी उपासना करनेके एक अभिन्न अंगके रूपमें हुआ. कहा जा सकता है कि भारतमें ईश्वर-भक्तिका इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना कि यहांके ईश्वरीय ज्ञानको प्रतिपादित करनेवाले ग्रंथों यथा वेदों, पुराणों, स्मृतियों, आगम, तंत्र आदि ग्रंथोंका इतिहास है. वैदिक कालसे लेकरके वर्तमान समय तक भक्तिके स्वरूपमें आया बदलाव भले ही दृष्टिगोचर होता हो किंतु भक्तिकी वह दासत्वकी भावना जो भक्तोंको अपने इष्टसे जोड़ती है, सदैवसे ज्यों-की-त्यों बनी रही है.

भक्ति शब्दकी व्युत्पत्ति भज् धातुमें क्तिन् प्रत्यय जुड़नेसे हुई है. वैदिक साहित्यमें भज् धातुका अर्थ है सेवा करना "भजसेवायाम्". अत: भक्ति शब्दका अर्थ हुआ अपने आराध्यकी सेवामें तत्पर रहना. भज् धातुका उपयोग वैदिक साहित्यमें अन्य अर्थोंमें भी प्राप्त होता है जैसे बांटना, भाग लेना अथवा प्राप्त करना अथवा साझीदार बनना.

अतः भगवत्-संवेदनाका साझीदार बननेसे ही कोई व्यक्ति भक्त कहला सकता है. 'भक्ति'की संज्ञाके विषयमें 'नारद पांचरात्र'में कहा गया है कि अन्य कामनाओंका परिहार करके निर्मल-चित्तसे समग्र इन्द्रियों द्वारा श्रीभगवान् की सेवाका नाम भक्ति है.

वेदोंमें भक्तिका वर्णन तीन चरणोंमें हुआ है. स्तुति, प्रार्थना, एवं उपासना. स्तुति भागमें प्रभुके गुणोंका कीर्तन होता है यथा पुरुष सूक्त, रुद्र सूक्त, नारायण सूक्त इत्यादि. प्रार्थनामें भगवान् से पापोंके प्रायश्चित एवं पुण्य प्राप्तिकी कामनाकी जाती है जैसा कि निम्नलिखित श्लोकमें देखा जा सकता है:

मनोमेतर्पयतवाचंमेतर्पयतप्राणंमेतर्पयत
चक्षुर्मेतर्पयतश्रोत्रंमेतर्पय-
आत्मानंमेतर्पयतपूजांमेतर्पयत
पशून्मेतर्पयतगणान्मेतर्पयत
गणा मेमावितृषन्.

(यजुर्वेद ६/३१)

अर्थात हे प्रभु! मेरे मनको तृप्त कर दो, मेरी वाणीको तृप्त कर दो मेरे प्राणोंको तृप्त कर दो मेरे नेत्र एवं सर्वेंद्रिय यह भी तृप्त हो जाए. मेरी आत्मा भी तृप्त कर दो और मेरी प्रजाएं भी तृप्त हो जायें, मेरे पशु भी तृप्त हो जायें तथा मेरी प्रजा प्यासी ना रह जाए.

इसी प्रकार उपासना भागमें पापमय जीवनसे पुण्यमय जीवनकी ओर ले जाते हुए विभिन्न वैदिक कर्मोंका वर्णन है, जिसे कि प्रभु भक्तिके अंगतया ही स्वीकार किया गया है.

भक्तिकी मूल-भावना जो वैदिक उपनिषदोंमें प्राप्त होती है वही पुराणोंमें दिखती है एवम वर्तमान समयमें भी विभिन्न भक्तिमार्गी संप्रदायोंमें स्वीकृतहै. अपितु यह कहना उचित ही होगा कि भक्तिमार्गीय परंपराका उद्गम भी वेदोंमें ही प्राप्त होता है.

कठोपनिषद (१.२.२३)में आता है:-

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनु स्वाम्॥२३॥

अर्थात : परमात्म तत्त्वको मात्र धर्मोपदेश सुनकर, स्तुति वंदनाके रूपमें उसकी चर्चा करके तथा शास्त्रोंका अध्ययन करके नहीं जाना जा सकता. जिस पर उसकी कृपा होती है वही उसे जान पाता है. वह परमात्म-तत्त्व अधिकारी साधकके समक्ष अपने वास्तविक स्वरूपको स्वयं ही अभिव्यक्त कर देता है.

इस वेद-वाक्यमें आया भगवद्-कृपाका वर्णन ही भक्तिमार्गका मूल है. इसी

प्रकार श्वेताश्वरउपनिषद् (६.२३)का कथन है:-

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः प्रकाशन्ते महात्मन इति॥२३॥

अर्थात : जिस साधककी परमात्मामें अत्यंतभक्ति है तथा जैसी परमात्मामें है वैसी ही गुरुमें भी है उस महान आत्माके हृदयमें ही ये बताए गए गूढ़ज्ञान प्रकाशित होते हैं. ऐसे महात्मामें ही यह (उपनिषद्) ज्ञान प्रकाशित होते हैं.

वेदोंकी ऋचाओंको प्रकट करनेवाले सभी ऋषि-मुनि वैदिक भक्तोंकी श्रेणीके अंतर्गत ही आते हैं. इनमें महर्षि वशिष्ठ, महर्षि भृगु, महर्षि कश्यप, महर्षिअत्रि, महर्षिमरीचि, महर्षि कपिल, महर्षि विश्वामित्र, शुक्राचार्य, भारद्वाज मुनि ,महर्षि शांडिल्य, मार्कंडेय मुनि, महर्षि दधीचि आदि आते हैं. इसी प्रकार पुराणोंमें भी अनेक भक्तोंकी कथाएं प्राप्त होती है जिन्होंने अपनी भक्तिसे अपने इष्टको प्राप्त किया. इस श्रेणीमें भक्त पुंडरीक, महात्मा जड़भरत, महर्षि वेदव्यास, शुकदेव जी, शौनक मुनि, सुदामा, उपमन्यु, भक्त गोकर्ण, भक्त ध्रुव, नारद मुनि, प्रहलाद, भक्त विरोचन, वृत्रासुर, राजा बलि, भक्त रोमहर्षण, शबरी, कुंती महारानी, महात्मा विदुर इत्यादि आते हैं. साथ ही पुराणोंमें वैदिक ऋषियोंका भी विषद वर्णन प्राप्त होता है.

जहां वैदिक भक्ति एवं उपासनाका स्वरूप मात्र एकांतिक वनवास करनेवाले ऋषि-मुनियों तक ही सीमित था, वहीं पौराणिक उपासना अपने सरल तथा कर्मकांड-विहीन रूपके कारण सर्व-सामान्य मनुष्योंको उपलब्ध हुई. वैदिक ऋचाओंको समझनेके लिए जहां 6 वेदांगोंके 12वर्षों तक चलनेवाले कठिन अध्ययनकी आवश्यकता थी. साथ ही वैदिक रचनाओंके पाठ तकके लिए भी नक्षत्र, समय, स्थान, सूत्र (अर्थात चार कल्पसूत्र) एवं स्वर आदिके कठिन नियम थे तथा जटिल कर्मकांडके नियम भी जन सामान्यकी लिए सुलभ नहीं थे. वहीं पौराणिक भक्ति सभीके लिए संभव थी. किंतु पौराणिक भक्तिका यह स्वरूप वेदोंसे पूर्ण रूपसे भिन्न नहीं था. क्योंकि भगवत्-कृपासे भगवान्की प्रेमसहित भक्ति वेदोंमें प्राप्त होती ही है एवं पौराणिक भक्तिमें भी वैदिक मंत्रोंका विनियोग एवं वैदिक आचारोंका विनियोग तो है ही. साथ ही इसका रूप

वैदिक कर्मकांडोंकी अपेक्षा बहुत सरल था. इसी कारण पुराण एवं इतिहास ग्रंथोंको कई स्थानों पर पंचम वेदकी संज्ञा भी दी गई थी. अर्थात् वेदका वह स्वरूप जो समस्त जनताके लिए सुलभ हो एवं जिसके नियम जन सामान्य द्वारा पालन करने योग्य भी हों.

भारतीय परंपरागत दृष्टिकोणसे पुराण उन्हें कहा जाता है जो सबसे पुराने हैं. इसे इस अर्थमें लिया जा सकता है कि जिस प्रकार गायत्रीमंत्र है, वह वेद-संहिता भागमें आता है. किंतु गायत्रीमंत्रकी उत्पत्ति कैसे हुई, विश्वामित्रका एक राजासे तपस्या द्वारा ब्रह्मर्षि बनना, वशिष्ठ मुनिके साथ हुई घटनाएं आदि यह पुराणोंसे प्राप्त होता है. पुराणोंमें इन घटनाओंकी कथा मात्र है और इन घटनाओंके फलस्वरूप ही गायत्रीमंत्रकी उत्पत्ति हुई थी अर्थात् ये घटनाएं मंत्रसे पूर्वकी है. अर्थात् इस प्रकार पुराण वेदसे पूर्वके हैं. लेखनकी दृष्टिसे इन्हें वेदके बाद ही लिखा गया किन्तु इनकी कथावस्तु वेद पूर्वकी है. वैदिक ग्रंथोंमें पुराणोंका उल्लेख इसी मतको पुष्ट करता है.

यत्र स्कम्भः प्रजनयन् पुराणं व्यवर्तयत् .
एकं तदङ्गं स्कम्भस्य पुराणमनुसंविदुः॥

अथर्ववेद- (१०.७.२६)

स्कंभसे उत्पन्न पुराणको व्यवर्तित किया वह स्कंभका अङ्ग पुराण कहा जाता है.

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्॥११॥
इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशासिनां च प्रियं धाम
भवति य एवम् वेद ॥

- अथर्ववेद (१५.६.१२)

अर्थ- इतिहास पुराण और गाथा नाराशंसीके प्रिय धाम होते हैं. एक व्रात्य विद्वान इतिहास, पुराण, गाथा व नाराशंसी द्वारा वेदोंका वर्धन व्याख्यान करता हुआ वृद्धिकी दिशामें आगे बढ़ता है.

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।

उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रित:॥

-अथर्ववेद (११.९.२४)

ऋक, साम, छंद, पुराण, यजु आदि द्युलोक और स्वर्गस्थ सभी देवता उच्छिष्ट यज्ञमें ही उत्पन्न हुए अर्थात पुराणोंका आविर्भाव ऋक साम यजु और छंदके साथ ही हुआ था.

माध्वाहुतयो ह वा एता देवानाम् यदनुशासनानि विद्या
वाकोवाक्यमितिहासपुराणं गाथा नाराशंस्य: स य एवं
विद्वाननुशासनानि विद्या वाकोवाक्यमितिहासपुराणं
गाथा नाराशंसीरित्यहरह: स्वाध्यायमधीते मध्वाहुतिभिरेव
तद्देवांस्तर्पयति त एनं त्रिप्तास्तर्पयन्ति योगक्षेमेण प्राणेन रे ॥

-शतपथब्राह्मण (११.५.८)

अर्थ- शास्त्र देवताओंके मध्य आहुती है। देवविद्या ब्रह्मविद्या आदि विद्याएं उत्तर प्रत्युत्तर रूप ग्रंथ इतिहास पुराण गाथा और नाराशंसी ये शास्त्र हैं। जो इनका नित्य प्रति स्वाध्याय करता है वह मानव देवताओंके लिए आहुति देता है।

स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य
महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृगवेदो यजुर्वेद: सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस
इतिहास: पुराणं विद्या उपनिषद्: श्लोका: सूत्राण्यनुव्याख्यानानि
व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि॥

- शतपथ ब्राह्मण (१४/५/४/१०)

जिस प्रकार चारों ओरसे आधान किए हुए गीले ईंधनसे उत्पन्न अग्निसे धूम्र निकलता है, उसी प्रकार हे मैत्रेयी! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरस, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, सूत्र, श्लोक, व्याख्यान, अनुव्याख्यान, इष्ट, हुत (यज्ञ किया हुआ) पायित, इहलोक, परलोक और समस्त प्राणी उस महान सत्ताके नि:श्वास ही हैं.

स होवाच - ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं

चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं
वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां
नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि॥

- (छान्दोग्य : ७/१/२)

नारदजी बोले, हे भगवन! मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्वण जानता हूं (इतिहास पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं) इतिहास पुराण जो वेदोंमें पांचवा वेद है, वह भी जानता हूं. श्राद्धकल्प, गणित उत्पाद विद्या, निधि शास्त्र, तर्कशास्त्र, नीति शास्त्र, निरुक्त, एकायन अर्थात पंचरात्र, ब्रह्म संबंधी उपनिषद् विद्या, भूत तंत्र, धनुर्वेद, ज्योतिष, सर्पदेवजन विद्या, देवजनविद्या, गंध धरण, नृत्य, गीत, वाद्य, इन सबको जानता हूं.

अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितम् एतद्यद्ऋग्वेदो यजुर्वेद
सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसइतिहास पुराणविद्या उपनिषद् श्लोका:
सूत्राण्यनुव्याख्या नानिव्याख्या ननिदत्तम्हुतमाशित पायित
मयचलोक सर्वाणि च भूतान्यस्यै वैतानि सर्वाणि नि: श्वसितान॥

- बृह. उ. (४/५/११)

अर्थ- उस परब्रह्म नारायणके नि:श्वाससे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरस, इतिहास, पुराण, उपनिषद् सूत्र, श्लोक, व्याख्यान, अनुव्याख्यान, इष्ट (यज्ञ) हुत (यज्ञ किया हुआ) पायित, इहलोक, परलोक और समस्त भूत हैं.

एवमीमे सर्वे वेदा निर्मितास्सकल्पा सरहस्याः सब्राह्मणा
सोपनिषत्का: सेतिहासा: सांव्याख्याता: सपुराणा: सस्वरा: ससंस्कारा:
सनिरुक्ता: सानुशासना सानुमार्जना: सवाकोवाक्या॥

- गोपथब्राह्मण (१/२/२०)

अर्थ - कल्प रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषद्, इतिहास, साम व्याख्याता, स्वर, संस्कार, निरुक्त, अनुशासन और वाकोवाक्य समस्त वेद परमेश्वरसे निर्मित हैं.

इसी प्रकार मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण कथन करते हैं :

स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्रे, धर्मशास्त्राणि चैव हि।
आख्यानामितिहासांश्च, पुराणान्यखिलानि च॥

-मनुस्मृति (३/२३२)

श्राद्धके उपरांत पितरोंकी प्रीतिके लिए वेद पारायण श्रवण कराएं और धर्मशास्त्र आख्यान इतिहास पुराण आदिको भी सुनाएं.

एतच्छुत्वारहः सूतो राजानमिदमब्रवीत.
श्रूयतां यत्पुरा वृतं पुराणेषु मया श्रुतम्॥

- वाल्मीकि रामायण

यह सुनकर सूतने एकांतमें राजासे कहा कि सुनो महाराज! यह प्राचीन कथा है जो मैंने पुराणोंमें सुनी है. इसके बाद राम-जन्मका चरित्र जो भविष्य था वह सब राजाको सुनाया कि राम आपके यहां जन्म लेंगे ऋंगी ऋषिको बुलाइए और वैसा ही हुआ.

पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिता:।
वेदा: स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥

- याज्ञ.स्मृति. (१/३)

अर्थ- पुराण न्याय मीमांसा धर्मशास्त्र और ६अंगों सहित वेद यह १४ विद्या धर्मके स्थान हैं.

इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण (१४/३/३/१३)में तो "पुराण वांग्मय"को वेद ही कहा गया है. छांदोग्य उपनिषद् **"इतिहास पुराणों पंचम वेदानाम् वेदम्"** (७/१/२/.४) में भी पुराणको वेद कहा है. बृहदारण्यक उपनिषद् तथा महाभारतमें कहा गया है कि **"इतिहास पुराणाभ्यां वेदार्थ मुपबर्हयेत्"** अर्थात वेदका अर्थ-विस्तार पुराणके द्वारा करना चाहिए इनसे यह स्पष्ट है कि वैदिक-कालमें पुराण तथा इतिहास को समान स्तर पर रखा गया है.

वेदोंसे प्रकट एवं पुराणोंमें विस्तारसे वर्णित भक्तिका यह स्वरूप ही आगे चलकर विभिन्न संप्रदायों द्वारा की जाति भक्तिके रूपमें परिणित हुआ. पुराणोंमें नारद मुनि, ब्रह्माजी, भगवान् शंकर, महालक्ष्मी, सनतकुमारों, वैखानस मुनि इत्यादि को भगवान् विष्णुका परम-भक्त बताया गया एवं इन्हीं महा-भक्तोंसे विभिन्न वैष्णव भक्तिमार्गी-संप्रदायोंका प्रारंभ भी बताया गया. इसी प्रकार पुराणोंमें मार्कंडेय मुनि, नंदी, लकुलिश आदिसे शैव-संप्रदायोंके उद्गमका वर्णन भी आता है. इनके अतिरिक्त भगवान् सूर्य, गणपति एवं शक्तिके उपासक संप्रदायोंका भी वर्णन सौर, शाक्त आदि पुराणोंमें प्राप्त होता है. यथा श्रीकृष्णके पुत्र सांब महाराज द्वारा संपूर्ण भारतमें द्वादश सूर्य मंदिरोंके निर्माणसे, जिनमें कि सुतीर अर्थात कोणार्क, मुंडीर अर्थात मोधेरा, कालपीके कालप्रियनाथ वाराणसीके सांब आदित्य एवं मुल्तानके विशाल सूर्य मंदिर आते हैं, प्रारंभ हुए सौर-संप्रदायका वर्णन सौर-पुराण, सांब-पुराण, भविष्य-पुराण तथा स्कंद-पुराण में प्राप्त होता है, एवं इसी प्रकार माता सतीके आत्मदाह एवं दक्ष यज्ञ-विध्वंसके कारण संपूर्ण भारतमें प्रकटे 51 शक्ति पीठों आदि केंद्रोसे प्रारंभ हुए शाक्त-संप्रदाय, गणपतिके अष्टविनायक मंदिरोंसे गणपत्य-संप्रदाय आदिका वर्णन भी पुराणोंसे ही प्राप्त होता है.

इन सभीकी अपनी विशिष्ट उपासना पद्धति इनके तत्तत् आगम-शास्त्रोंमें वर्णित है. आगमका अर्थ है परम्परासे आए हुए शास्त्र, जिन्हें देवताओंके निर्देशसे उनके परम-भक्त पौराणिक ऋषि मुनियों द्वारा लोकमें प्रकट किया गया. उपासनाकी इन भक्तिमार्गीय परंपराओंका वर्णन यदा-कदा वेदोंमें भी प्राप्त होता है. यथा सामवेदके तांड्य महाब्राह्मण (१४/४/७)में वैखानस मुनिका उल्लेख प्राप्त होता है जिनके द्वारा प्रकटित वैखानस-आगम एक प्रसिद्ध वैष्णव-आगम है तथा तिरुपतिवैंकटेश बालाजीकी पूजा पद्धतिमें वर्तमानमें भी प्रयुक्त है. यद्यपि वैखानस-संप्रदाय लुप्तप्राय हो चुका है. महर्षि भृगु, महर्षि कश्यप, महर्षि अत्रि, महर्षि मरीचि ये चारों वैदिकऋषि वैष्णवभक्तिमें इन्हीं वैखानसमुनिके दीक्षित शिष्य थे, जिनकी परम्परा ही प्राचीन वैखानास-संप्रदाय कही जाती थी.

इसी प्रकार भगवान् विष्णुके अवतार नारायण ऋषि द्वारा नारदमुनिको

उपदिष्ट पंचरात्र वैष्णव-आगमोंका वर्णन भी प्राप्त होता है. नारायण ऋषि द्वारा प्रकटित यह पांचरात्रिकी वैष्णव परंपरा ही भागवत परम्परा अथवा भागवत धर्म कहलाई. शुक्ल यजुर्वेदकी वैधेय शाखा जिसका अन्य नाम एकायन शाखा था,से संबंधित होनेके कारण इस प्राचीन भागवत-धर्मको एकायण नामसे भी संबोधित किया जाता था. पांचरात्रके ग्रंथ ईश्वर संहिताके प्रथम अध्याय अठारहवें श्लोकमें नारदमुनिने मोक्ष प्राप्तिके इस एकमात्र सरल मार्गको एकायन कहा है.

इस एकायन धर्मका उल्लेख छांदोग्य उपनिषद् (७/१/२)में नारद मुनि अपने द्वारा ज्ञात शास्त्रोंकी सूचीमें करते हैं.

स होवाच - ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं
चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं
वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां
नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि॥२॥

इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण (१३.६.१.१)में ब्रह्म-देव द्वारा पुरुषमेध यज्ञ द्वारा पंचरात्रिकी विद्या प्राप्त करनेका भी वर्णन प्राप्त होता है.

इसी पंचरात्रकी भक्तिका वर्णन वराह-पुराण (६६.१७.१८)में भी प्राप्त होता है जिसे श्रीमध्वाचार्य द्वारा अपने मुण्डकोपनिषद(१.१.५)के भाष्यमें प्रमाण स्वरूप उद्धरित किया गया है.

पंचरात्र ग्रंथोको प्रमाणित करता उल्लेख महाभारतके शांति-पर्व (३४९.६८) में भी प्राप्त होता है, जिसमें पंचरात्र विद्याको स्वयं भगवान् नारायण (नर- नारायण रूपमें अवतरित ऋषि-स्वरुप) द्वारा उपदिष्ट बताया गया है. **विग्रहोपासनाका विशदवर्णन करते पांचरात्र ग्रंथों एवं अन्य आगमों तथा पुराणों का वैदिक उद्धरण मूर्तिपूजाके वैदिक कालमें भी प्रचलित होनेको सिद्ध करता है.**

इसीके साथ महाभारतमें पाशुपत धर्मका वर्णन भी प्राप्त होता है जो शैव एवं वैष्णव आदि संप्रदायोंकी प्राचीन वैदिक-कालमें भी स्थितिको पुष्ट करता है. कालांतरमें हुए और भी कई संप्रदायोंके उद्गमकी कथा पुराणोंसे प्राप्त होती है.

वैष्णव संप्रदायोंके इसी क्रममें भगवान् शिव द्वारा दीक्षित परंपरामें आचार्य विष्णुस्वामीसे प्रारंभ हुए वैष्णव-संप्रदायको रुद्र-संप्रदाय अथवा विष्णुस्वामी-संप्रदाय, देवी लक्ष्मीसे प्रारंभ हुए संप्रदायको श्री-संप्रदाय अथवा रामानुज संप्रदाय, ब्रह्माजीसे प्रारंभ हुए संप्रदायको ब्रह्म-संप्रदाय अथवा मध्व-संप्रदाय तथा सनत्कुमारोंसे प्रारंभ हुए संप्रदायको कुमार-संप्रदाय अथवा निंबार्क-संप्रदाय कहा जाता है. कालांतर में और भी कई संप्रदाय अस्तित्व में आते गए .

परंपरागत रूपसे विष्णुस्वामी द्वारा प्रवर्तित रुद्र-संप्रदाय समस्त वैष्णव संप्रदायोंमें सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है. प्रचलित परंपराके अनुसार विष्णुस्वामी नामक तीन आचार्य रुद्र-संप्रदायमें हुए हैं. जिनमेंसे सबसे प्रथम आदि विष्णुस्वामीको ही रुद्र-संप्रदायकी स्थापनाका श्रेय दिया जाता है. इनका जन्म जनमेजयके सर्पसत्रके पश्चात द्रविड़ देश अर्थात तमिल प्रांतमें हुआ था. वल्लभदिग्विजय ग्रंथके अनुसार इनके पिता देवस्वामी पांड्यविजय नामक पांड्य नरेशके राजपुरोहित थे. कलयुगके प्रारंभमें कृष्णद्वैपायन व्यासमुनिसे पञ्चवर्ण, अष्टवर्ण, द्वादशवर्ण, दशवर्ण, तथा अष्टादशवर्ण मन्त्र अर्थात शरणाष्टाक्षर, नारायणाष्टाक्षर, श्रीगोपालदशाक्षर, भगवद्वादशाक्षर, कृष्णाष्टाक्षर, तथा गोपालमंत्र प्राप्तकर आदिविष्णुस्वामीने रुद्र-संप्रदायका प्रारंभ किया. द्वारिकामें भगवान् कृष्णके निवास स्थान पर वज्रनाभ द्वारा निर्मित मंदिरकी प्रतिष्ठाका श्रेय आदिविष्णुस्वामीकोही दिया जाता है (गर्ग संहिता ६०.३९-४१). कहा जाता है इन्होंने जगन्नाथपुरी मंदिरको बौद्ध प्रभावसे मुक्त कर वहां श्रीजगन्नाथ बलदेव सुभद्राकी वैदिक-पौराणिक रीतिसे सेवा-पूजन आदिकी परंपरा पुनः स्थापित की. बौद्ध प्रभावके चलते विष्णुस्वामीके आगमनसे पूर्व बलदेव, सुभद्रा, जगन्नाथकी उपासना क्रमशः बुद्ध, धर्म व संघ मूर्तिके रूपमेंकी जाती थी. यद्यपि वल्लभदिग्विजय ग्रंथमें इस प्रसंगका उल्लेख स्पष्ट रूपसे नहीं दिया गया है किंतु बौद्धोंको पराजित कर श्रीजगदीशके दर्शन करनेका उल्लेख अवश्य प्राप्त होता है. इसीसे कुछ शोधकर्ताओं द्वारा यह अनुमान व्यक्त किया गया कि विष्णुस्वामी बुद्धके कुछ समय बाद हुए होंगे. श्रीके. सी.वैष्णवके शोधके अनुसार विष्णुस्वामीका जन्म वि.स.से 680 वर्ष पूर्व श्रवण-कृष्ण सप्तमीको हुआ. किंतु आदि-विष्णुस्वामीके पश्चात तथा ईस्वी संवत 830 के लगभग,

कांचीपुरम नगरके द्वितीय विष्णुस्वामीके मध्य 700 आचार्य इनकी परम्परामें होनेका उल्लेख भी प्राप्त होता है. विक्रम संवतसे मात्र 600 वर्ष पूर्व हुए आदिविष्णुस्वामीके बाद 700 आचार्योंका इतनी कम अवधिमें परम्परामें होना अशक्य प्रतीत होता है. सम्भव है जगदीश क्षेत्रमें बौद्धोंको पराजित करनेका कार्य विष्णुस्वामी परम्परामें हुए 700 आचार्योंमेंसे किन्हींने किया हो, जो बादमें विष्णुस्वामीके साथ जुड़ गया हो. अथवा गौतम बुद्धके पूर्व हुए अन्य बुद्ध अवतारोंके अनुयायियोंका यहां वर्णन हो. बौद्ध-ग्रंथोंमें शाक्यमुनि गौतम बुद्धके पूर्व हुए 27 बुद्धोंका वर्णन प्राप्त होता है.

श्रीआदि-विष्णुस्वामीने गृहस्थाश्रममें स्थित हो कई वर्षो तक दक्षिणमें भागवत-धर्मका प्रचार किया जिसके बाद वैष्णव सन्यास धारण कर कांचीपुरममें हरिमूर्ति (वरदराज स्वामी)की स्थापना कर भगवद्धाम पधारे. आदि-विष्णुस्वामीके पश्चात आचार्य सिंहासन पर विराजित उनके शिष्य देवदर्शनाचार्यकी परंपरामें 700 आचार्य हुए जिनके पश्चात ईस्वी संवत 830 के लगभग, कांचीपुरम नगरके द्वितीय विष्णुस्वामीका उल्लेख प्राप्त होता है, जिन्हें राजगोपाल विष्णुस्वामी भी कहा जाता है. राजगोपाल विष्णुस्वामीने द्वारकामें पुनः भगवान् द्वारकाधीशको स्थापित किया. वल्लभदिग्विजय ग्रंथके अनुसार राजविष्णुस्वामीसे वादमें पराजित होने पर बौद्धोंने पुष्पपुरके राजाकी सहायतासे इनके शिविर पर आक्रमण कर समस्त पुस्तकोंको जला दिया था, जिससे संप्रदायके प्राचीन साहित्यका लोप हो गया. इसे भगवद् इच्छा मान, वे कांची आये तथा बिल्वमंगलाचार्यको अपने स्थान पर विराजित कर वैकुंठ पधारे. वल्लभदिग्विजय ग्रंथके अनुसार महाप्रभु वल्लभाचार्यका संप्रदायाचार्यके रूपमें तिलक करने हेतु गुरु-आज्ञासे बिल्वमंगलाचार्य 700 वर्षों तक योगबलसे जीवित रहे. इसी बीच तृतीय विष्णुस्वामी तेरहवीं सदी ईस्वीमें हुए जिन्हे प्रभुविष्णुस्वामी कहा गया. इन्होंने जनार्दन क्षेत्र (वरकला केरल)में अपना मठ स्थापित किया. आपने भागवत-संप्रदायकी रक्षा हेतु महादेव शिवकी आज्ञासे अपने शिष्योंको गोपाल-गायत्री प्रदान कर वैष्णवी सेनाका निर्माण किया. संभवतः प्रभुविष्णुस्वामी ही कावेरी नदीके समीप किसी ग्रामके वासी होनेके कारण कावेरी-विष्णुस्वामी कहे गए. जिनका उल्लेख धर्मशास्त्रके इतिहासमें डॉ पी. वी. कानेने भी किया है. किंतु वल्लभदिग्विजयमें कावेरी-विष्णुस्वामीका कोई

वर्णन प्राप्त नहीं होता. अतः संभव है कावेरी-विष्णुस्वामी नामसे कोई अन्य आचार्य रुद्र-संप्रदायकी परंपरासे इतर भी हुए हो. प्रभुविष्णुस्वामीके पश्चात जनार्दन क्षेत्रमें संप्रदायके आसन पर इनके शिष्य श्रौतनिधि स्वामी विराजमान हुए. इन्ही श्रौतनिधि स्वामीकी परंपरामें गोविंदाचार्य, तथा प्रेमाकर मुनि हुए. जनार्दन क्षेत्र स्थित प्रेमाकर मुनि ही महाप्रभु वल्लभाचार्यके पिता लक्ष्मण भट्टजीके गुरु थे. प्रचलित अनुश्रुति तथा वल्लभदिग्विजय ग्रंथ के अनुसार राजगोपाल-विष्णुस्वामीके शिष्य बिल्वमंगलाचार्यने ही श्रीमद्वल्लभाचार्यको विष्णुस्वामी-संप्रदायके गादीपति आचार्यके रूपमें तिलक किया था. किन्तु महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य इससे पूर्व ही विष्णुस्वामी-संप्रदायमें अपने पिता द्वारा दीक्षित हो चुके थे. ईस्वी सन् 1489के लगभग वल्लभाचार्य द्वारा उज्जैनके अपने तीर्थ पुरोहितको दिए गए लेखपत्र एवम् और भी कई स्थानोंमें श्रीमहाप्रभुजीने स्वयंको विष्णुस्वामी मतानुयायी ही कहा है.

जिस प्रकार रुद्र-संप्रदायका प्रारंभ भगवान् शिवसे है, उसी भांति श्री-संप्रदाय लक्ष्मीदेवीसे प्रारंभ हुआ माना जाता है. इस संप्रदायके सभी प्रमुख आचार्य मूल रूपसे दक्षिण भारतमें ही हुए एवं 11वीं शताब्दीमें श्रीरामानुजाचार्य द्वारा प्रतिपादित होनेके कारण इस संप्रदायको रामानुज-संप्रदाय भी कहा जाता है. श्रीसंप्रदायमें कई लोकप्रिय आचार्य हुए जिनमें वेदांतदेशिकाचार्य, पिल्लईलोकाचार्य, रामानंदाचार्य आदि प्रसिद्ध हैं. उत्तर भारतमें रामानंदाचार्यने ही श्रीरामकी भक्तिको सर्वाधिक लोकप्रिय बनाया. आगे चलकर गोस्वामी तुलसीदास इत्यादि इन्हीं रामानंदाचार्यकी परंपरामें हुए जिन्होंने पुनः भक्तिमार्गको आम-जनों तक पहुंचानेका कार्य किया.

इसी प्रकार कुमार-संप्रदायके प्रवर्तक निंबार्काचार्य हुए. निंबार्काचार्यकी परंपरामें भी कई लोकप्रिय भक्त कवि हुए जिन्होंने कृष्ण-भक्तिका संपूर्ण उत्तर भारतमें काफी प्रचार प्रसार किया. परंपरा अनुसार मूल निंबार्काचार्यका जन्म (भविष्य पुराण अनुसार युधिष्ठिर शके 6में कार्तिक शुक्ल 15)को कलियुगके प्रारंभमें दक्षिण भारतमें वैदूर्यपत्तन(दक्षिण काशी)में अरुणमुनि (तैलंग)की पत्नी जयन्तीदेवीके गर्भसे हुआ माना जाता है. किंतु इसके कोई भी साहित्यिक तथा ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त नहीं होते. निम्बार्क-सम्प्रदायके कुछ विद्वानोंके मतसे विक्रमकी छठवींसे सातवीं शताब्दीके

मध्य निम्बार्काचार्यका प्रादुर्भाव हुआ. कुछ विद्वानोंने निम्बार्काचार्यका काल 620-690 ईस्वी निर्धारित किया है (Rādhā-Kṛṣṇa's Vedāntic Debut:Chronology & Rationalisation in the Nimbārka Sampradāya:Vijay Ramnarace पृष्ठ 180). आधुनिक इतिहासकारोंने निम्बार्काचार्यको भास्कराचार्यके द्वैताद्वैत मतसे समानताके कारण 13वीं शती ईस्वीका सिद्ध किया है. माता-पिता द्वारा बालकका नाम 'नियमानन्द' रखा गया और यही आगे श्रीनिम्बार्काचार्यके नामसे प्रख्यात हुए. वे कब गृह त्यागकर व्रजमें आये, इस विषयमें कुछ अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती. व्रजमें श्रीगिरिराज गोवर्धनके समीप ध्रुवक्षेत्र उनकी साधना-भूमि कही जाती है.

निंबार्कके तीन प्रत्यक्ष शिष्योंका उल्लेख मिलता है, गौरमुख ऋषि, उदुम्बर ऋषि और श्रीनिवास. गौरमुखका नामोल्लेख हमें पुराणोंमें भी मिलता है, वह भी प्रायः आरुणि (निंबार्क)के शिष्यके रूपमें अर्थात् उन्हें आरुणि गौरमुख कहा गया है. गौरमुख ऋषिने "श्रीनिंबार्क सहस्रनाम'' स्तोत्रकी रचनाकी थी. इस स्तोत्रकी रचना प्रणाली पौराणिक युगकी है. उदुम्बर ऋषिने वैष्णव धर्मकी आचार संहिता बनाई थी जो कि "औदुम्बर संहिता"के नामसे प्रसिद्ध है. इसके अतिरिक्त "श्रीनिंबार्क विक्रान्ति" नामक २२० श्लोकोंके खंड काव्य किंवा प्रशंसा-स्तोत्रकी रचनाकी थी जिसमें निंबार्काचार्यके अवतार-चरितका अलौकिक वर्णन किया है. इन्होंने ब्रह्मसूत्रके श्रीनिवासाचार्यके भाष्य पर "वेदांत कौस्तुभ प्रभा'', गीता पर "तत्व प्रकाशिका" नामक टीका, "मांडुक्योपनिषद् भाष्य'' , "भागवतका वेदस्तुति भाष्य", "क्रम दीपिका" आदि ग्रंथ रचे. श्रीनिवास आचार्य परम-भागवत नंदवंशके कुल पुरोहित महर्षि श्रीशांडिल्यके पुत्र थे. किंतु यहां इस संभावनासे इनकार नहीं किया जा सकता इन नामके कोई अन्य ही भक्त महापुरुष 13वीं शताब्दीमें ना हुए होंगे. इस संप्रदायका प्राचीन केंद्र मथुरा ही था. म्लेच्छोंके आक्रमणके कारण संप्रदायका अधिकांश साहित्य नष्ट हो गया तथा पूर्ण गुरू-परम्परा भी ज्ञात न रही. 15वीं शताब्दी ईस्वीमें हुए आचार्य केशव भट्ट कश्मीरी इस संप्रदायके एक प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं जिन्हें इस संप्रदायमें निंबार्काचार्यका ही अवतार माना जाता है.

इनका दर्शन द्वैताद्वैतवाद (स्वाभाविक भेदाभेदवाद, जिसे कुछ विद्वान

भास्कराचार्य द्वारा प्रकट बताते हैं) कहा जाता है एवं इन्होंने राधा-कृष्णकी भक्तिमय उपासना पर अत्यधिक बल दिया.

इसी प्रकार ब्रह्म-संप्रदायका उद्गम ब्रह्माजीसे माना जाता है. इस संप्रदायके प्रवर्तक आचार्य 12वीं 13वीं शताब्दीमें मध्वाचार्य नामसे प्रसिद्ध हुए एवं इनका दर्शन द्वैतवाद कहा गया. मध्वाचार्यकी परंपरामें सन्यासी वैसे तो आदि शंकराचार्यके दशनामी सन्यासियोंके अंतर्गत ही आते हैं. किंतु शंकर-मतके अद्वैतवाद दर्शनके विपरीत इनका दर्शन द्वैतवाद था जिसके अनुसार जीवको भगवान् से सर्वदा भिन्न मानकर, जीवकी सृष्टि मात्र भगवान् की भक्तिके लिए है ऐसा स्वीकार किया गया. इस संप्रदायके कई प्रसिद्ध आचार्य हुए यथा विजयनगर साम्राज्यके राजगुरु व्यासराय स्वामी, विजयध्वज आचार्य इत्यादि. इसी परंपरामें 15वीं सदीके सन्यासी आचार्य माधवेंद्र पुरी हुए जिनसे श्रीमद्वल्लभाचार्यने भागवत आदि वैष्णव शास्त्रोंका अध्ययन किया. माधवेंद्र पुरीको ही बंगाल एवं पूर्वी भारतमें कृष्ण-संकीर्तनके प्रचार-प्रसार प्रारंभ करनेका श्रेय दिया जाता है. माधवेंद्र पुरीके ही शिष्य ईश्वर पुरीसे श्रीकृष्णचैतन्यने दीक्षा ग्रहण कर संपूर्ण पूर्वी भारतको कृष्ण-संकीर्तनसे आप्लावित कर दिया. किंतु आगे चलकर श्रीकृष्णचैतन्यकी परंपरामें हुए आचार्योंने द्वैतवादी दर्शनके स्थान पर अचिंत्य-भेदाभेदवादका प्रचार किया जिस कारण कालांतरमें बंगाल (गौड़देश) स्थित मध्व-संप्रदायकी इस शाखाको गौड़ीय-संप्रदाय कहा गया. किंतु अचिंत्य-भेदाभेदवादको सर्वप्रथम प्रकट करने वाले श्रीजीव गोस्वामी ने कहीं भी इस वादके मूल संस्थापकाचार्य का कोई उल्लेख नहीं किया है और न ही यह उल्लेख ही किया कि यही मत श्रीचैतन्यको अभीष्ट था. कई विद्वानोंके अनुसार गौड़ीय-संप्रदाय अपने प्रारंभसे ही द्वैतवादी मध्व-संप्रदायसे सर्वथा भिन्न अचिंत्य-भेदाभेदवादी संप्रदाय था एवं इसे पूजा पद्धति रीति एवं भजन प्रणाली आदिको देखते हुए मध्व संप्रदायका भाग अथवा शाखा नहीं कहा जा सकता.

इन संप्रदायोंके अतिरिक्त भी कई भक्त ऐसे भी हुए जिन्होंने अपनी परम रसमयी भक्ति तथा पदरचनाके द्वारा आमजनोंको मोहित कर वैष्णव शैव आदि भक्तिमार्गकी तरफ प्रेरित करनेका कार्य किया. इनमें पंद्रहवीं शताब्दी में हुए स्वामी हरिदास जी तथा गोस्वामी श्रीहितहरिवंश विषेश उल्लेखनीय हैं. स्वामी हरिदासजीकी

परंपरा वर्तमानमें सखी संप्रदाय कहलाती है जो कि स्वामी हरिदासजीके शिष्य श्रीजगन्नाथके वंशज गोस्वामीगणोंके अनुसार विष्णुस्वामी संप्रदायकी एक शाखा है तथा हरिदासजीकी विरक्त शिष्य परंपराके अनुसार निंबार्क संप्रदायकी एक शाखा है. वल्लभ दिग्विजयग्रंथमें भी उल्लेख प्राप्त होता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्यजीका विधिवत विष्णुस्वामी संप्रदायाचार्यके रूपमें तिलक करनेके पश्चात बिल्वमंगलाचार्यने वृंदावन जा अपने शिष्य हरि ब्रह्मचारीको अपने सेव्य वेणुधरगोकुलेशका स्वरूप सौंपा तत्पश्चात प्रयाग जा वैकुंठ पधारे. ***(इति श्रीविल्वमङ्गलाचार्यैः समुक्ताः श्रीवल्लभाचार्यास्ततोऽष्टादशाक्षरं संप्रदायरहस्यं च गृहीत्वा प्रणम्य पुनर्दर्शनं देयमित्युक्त्वा विसर्जयांबभूवुः। ततो मुनिरसौ वृन्दावनं गत्वा निजां वेणुधरगोकुलेशमूर्तिं निजशिष्याय हरिब्रह्मचारिणे समर्प्य तीर्थराजं प्रयागं गतः।).*** श्रीबिल्वमंगलाचार्यने श्रीवल्लभका सम्प्रदायाचार्यके रूपमें तिलक विजयनगर शास्त्रार्थके उपरांत किया था तथा इस शास्त्रार्थकी तिथि ईस्वी सन् 1504 थी. हरिदासजीके विरक्त शिष्योंकी परंपरा अनुसार विक्रम संवत 1562 अर्थात 1505 ईस्वीमें मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी पंचमी तिथिको बिहारीजीका प्राकट्य बताया जाता है जो वल्लभ दिग्विजयके वर्णनसे अद्भुत साम्य रखता है. किंतु सेवायत गोस्वामीवंशजोंकी परंपरानुसार बिहारीजीका प्राकट्य ईस्वी सन् 1543में हुआ था तथा स्वामी हरिदासजीका वृंदावन आगमन 1537 ईस्वी में हुआ था तथा उनका जन्म ईस्वी सन् 1512 में हुआ था. इसका उल्लेख प्रभुदयाल मित्तल द्वारा अपने ग्रंथ “स्वामी हरिदास - जीवनी और वाणी” में भी किया गया है जिसे सेवायत आचार्य प्रहलाद वल्लभ गोस्वामी द्वारा भी पुष्ट किया गया है.

अतः संभावना है कि वल्लभ दिग्विजयका उक्त वर्णन स्वामी हरिदास तथा बिहारिजीका हो अथवा द्वितीय संभावना यह है कि ये हरि ब्रह्मचारी स्वामी हरिदासजीके पूर्व वेणुधगोकुलेशके उपासक रहे हों जिनके पश्चात् यही स्वरूप स्वामी हरिदाजीको प्राप्त हुआ हो. संभवतः चोर लुटेरोंके उपद्रवके चलते स्वरूपको कुएंमें छुपा दिया गया होगा. हरि ब्रह्मचारी तथा स्वामी हरिदासजी दोनोंको एक ही मान लेनेसे ऐतिहासिक मतभेद उभरते चले गए. अतः वल्लभ दिग्विजयके प्रकाशमें यह द्वितीय संभावना अधिक बलवती प्रतीत होती है जिससे श्रीहरिदासजीकी विरक्त परंपरा तथा सेवायत

गोस्वामी परंपरा दोनोंकी ही मान्यता सत्य सिद्ध होती हैं. वार्ता साहित्यमें भी स्वामी हरिदासजी को गोस्वामी श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरणके समकालीन बताया गया है.

स्वामी हरिदासजी ध्रुवपद गायनमें अत्यंत निपुण थे. प्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेनने भी स्वामी हरिदासजीसे ही गायन कलाकी शिक्षा ग्रहण की थी. एक किंवदंतिके अनुसार ये जन्मना मूक थे किंतु पांच वर्षकी अवस्थामें स्वामी हरिदासजीके सान्निध्यमें इनकी वाणी प्रस्फुटित हुई. इतना निश्चित है कि सन् 1562 ईस्वी में अकबरी दरबारमें आनेके पश्चात ही हुसैनी नामक मुसलमान कन्यासे तानसेनका विवाह हुआ था. इन सभी तथ्योंको देखते हुए शिवसिंह सेंगर द्वारा उल्लिखित तानसेनका जन्म संवत 1588 अर्थात ईस्वी सन् 1531 (शिवसिंह सरोज, पृष्ठ 429) सही प्रतीत होता है. पश्चात गोस्वामी श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरणसे परिचय होने पर तानसेनने श्रीप्रभुचरणसे विधिवत पुष्टिमार्गीय दीक्षा ग्रहण करी तथा गोविंदस्वामीसे सांप्रदायिक विष्णुपद गायन पद्धति, अंतर्निहित भाव भावना सहित सीखी.

इसी प्रकार ईस्वी सन् 1502में जन्मे, गोस्वामी श्रीहितहरिवंशने वृन्दावनेश्वरी श्रीराधाजीको अपना गुरु तथा इष्ट स्वीकारा तथा तथा स्वामिनी श्रीराधाजीकी आज्ञासे 1534 ईस्वीमें वृंदावन आ श्रीराधावल्लभलालकी रसमय सेवासे समस्त जनोंको अभिभूत किया (श्रीहितहरिवंश गोस्वामी संप्रदाय और साहित्य- ललिताचरण गोस्वामी). इन सभीने 15वीं सदीमें अपने पद गायनसे समस्त उत्तर भारतीय जनताको राधा-कृष्णकी प्रेम मई उपासनाकी तरफ अग्रसर करनेका कार्य किया.

इसी प्रकार 28 शैव-आगमों एवं पुराणों में पाशुपत आम्नाय अर्थात शैव-संप्रदायोंका वर्णन भी प्राप्त होता है. पुराणों तथा आगमोंमें वर्णित भक्तिमार्गी उपासनाके अंतर्गत ही मूर्तिपूजाका विशदवर्णन प्राप्त होता है. अतः उपरोक्त प्रमाणों द्वारा स्पष्ट रुपसे कहा जा सकता है कि वैदिक श्रौत-स्मार्त यज्ञों द्वारा देवोंका यजन-याजन तथा पांचरात्र, आगम एवं पुराणोंमें वर्णित भक्तिमार्गी मूर्ति-पूजा द्वारा उन्हीं देवोंका प्रेममयी पूजन सत्कार, ये दोनों ही प्राचीन वैदिक कालसे अनवरत विद्यमान हैं.

2. वैदिक-साहित्य मूर्तिपूजाका समर्थक अथवा विरोधी

वैदिक शास्त्रोंमें भगवान् को **"विरुद्धधर्माश्रय"** के रूपमें जाना जाता है - एक साथ विद्यमान विपरीतताओंका भंडार. वे **"कर्तुम- अकर्तुम- अन्यथा कर्तुमसमर्थः"** भी हैं. - इतने असीमरूपसे महान कि वे संभव और असंभव दोनोंको कर सकते हैं, और इन दोनों स्थितियोंके विपरीत भी कर सकते हैं. इस प्रकार भगवान् अविनाशी और सर्व-सामर्थ्यशाली होनेसे पत्थरकी छवियों (मूर्ति)के माध्यमसे अपने भक्तोंसे प्रेमपूर्ण-भावोंका आदान-प्रदान करनेमें पूर्णरूपसे समर्थ हैं. साथ ही वे ऐसा यज्ञ या किसी अन्य निमित्तसे करनेमें भी समर्थ हैं. श्रीभगवान् के दिव्यगुणोंका मूर्तरूप होनेके कारण सभी देवता इसी प्रकारसे मूर्ति द्वारा पूजनसत्कार ग्रहण करनेमें सक्षम हैं.

भगवान् सर्वशक्तिमान होनेके कारण पदार्थको आत्मामें परिवर्तित कर सकते हैं और एक पत्थर या धातुकी छविको एक दिव्य अभिव्यक्तिमें बदल सकते हैं. जिसे अर्चा-अवतारके रूपमें जाना जाता है. अर्थात पूजा प्राप्त करनेके लिए भगवान् द्वारा लिया गया अवतार.

कोई यह तर्क दे सकता है कि पदार्थ अशुद्ध है जबकि ईश्वर शुद्ध है, इसलिए वह अशुद्ध छवियोंके माध्यमसे प्रतिक्रिया नहीं देगा. लेकिन क्या पदार्थकी अशुद्धता ईश्वरकी पवित्रतासे अधिक है? क्या इसका अर्थ यह नहीं होगा कि पदार्थकी सामर्थ्य ईश्वरसे अधिक है? यह तार्किक मूर्खता होगी. इस प्रकार ईश्वर यदि चाहे तो पदार्थके माध्यमसे अवश्यही प्रकट हो सकता है. और जब वह ऐसा करता है तो पदार्थके संपर्कसे वह कभी अशुद्ध नहीं होता, बल्कि उसके संपर्कसे पदार्थ शुद्ध हो जाता है. वास्तवमें परब्रह्म भगवान् से प्रकट होनेवाले इस ब्रह्माण्डके सभी द्रव्य और पदार्थ स्वयं उनके अंशके अलावा और कुछ नहीं हैं.

भक्तके प्रेमके फलस्वरुप अथवा अपनी अहैतुकी कृपा (causeless mercy) द्वारा भक्तको अपना प्रत्यक्ष अनुभव करानेमें भगवान् परम स्वतंत्र हैं. समस्त वैदिक-शास्त्रोंका निष्कर्ष भी यही है. यथा......

इंद्रोमायाभि: पुरुरूपईयते.

(बृहदारण्यक उपनिषद् २.५.१९)

वह परमात्मा एक होते हुए भी मायासे अनेक रूपोंवाला प्रतिभासित होता है.

इदंसर्वं यद् अयं आत्मा.

(बृहदारण्यक उपनिषद् २.४.६)

लोक, देवता, समस्त प्राणी, ये सभी आत्मा (परमात्माका अंश) ही हैं.

अतः मूर्ति भी उस परमात्माका ही अंश है.

सर्वस्य ईशान: सर्वस्याधिपति: सर्वंइदंप्रशास्ति.

(बृहदारण्यकउपनिषद् ५.६.१)

वह सभीका स्वामी एवं अधिष्ठाता है और जो भी कुछ (दृष्य़ जगत) है सभीको अपने शासनमें रखता है.

सर्वंखल्विदं ब्रह्म - (छांदोग्य उपनिषद् ३.१४.१)

यह संपूर्ण जगत निश्चय ब्रह्म स्वरूप ही है. अतः शास्त्रमर्यादासे शुभ द्रव्योंद्वारा निर्मित मूर्ति भी ब्रह्मरूप ही है.

यथा: सौम्य एकेनमृत्पिंडेनसर्वंमृण्मं विज्ञात स्यात्

(छांदोग्य उपनिषद् ६.१.४)

अर्थ- हे सौम्य जिस प्रकार एक मिट्टीके पिंडसे समस्त मिट्टीके पदार्थोंका बोध हो जाता है वस्तुतः विभिन्न प्रकारके नाम तो केवल वाणीका ही विकार हैं, सत्य तो केवल मृत्तिका ही है , उसी प्रकार ब्रह्मको जानो.

सत्यं च अनृतं च सत्यं अभवत्. यदिदं किं च। तत् सत्यं इति आचक्षते.

(तैत्तिरीयउपनिषद् २.६)

वही चैतन्य एवं जड़ रूप हुआ. वह सत्य-स्वरूप परमात्मा ही सत्य एवं विद्या रूप हो गया. विद्वतजन कहते हैं, जो कुछ भी अनुभवमें आता है वह सत्य(ब्रह्म) ही है.

अतः शास्त्रोंका (संहिता, ब्राह्मण ग्रंथ, पुराण इतिहास, आगम शास्त्र आदि) मत है कि इस संसारमें जितने भी नाम-रूप हैं, वे सभी परब्रह्म भगवान्‌के ही नाम-रूप हैं. किंतु अल्पज्ञ मनुष्योंके लिए इन सभी वैविध्यता पूर्ण नाम, रूप तथा कर्मोंके द्वारा ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाना संभव नहीं. अतः हर किसी स्थान पर एक समानरूपसे भगवत्प्राप्ति हेतु अथवा अभीष्ट प्राप्ति हेतु देव-पूजाका अनुष्ठान नहीं किया जा सकता. इसके लिए पुनः शास्त्रोंमें (यथा श्रीमद्भागवत पुराणका एकादश स्कंध इत्यादि)में विस्तारसे वर्णनकी गई भगवत्-प्रणीत विधिका ही अवलंबन किया जाना, और भी आवश्यक हो जाता है.

इसे जलके उद्धरण द्वारा समझाया गया है जो जलवाष्पके रूपमें सर्वत्र विद्यमान है. किंतु यह जल किसी प्यासे व्यक्तिकी तृष्णा शांत नहीं कर सकता. इसी तरह हालांकि भगवान् हर जगह विद्यमान हैं, हमें उनकी भक्तिके लिए दैव विग्रहके रूपमें व्यक्त उनके सुलभ रूपकी आवश्यकता है- (अर्थात भगवद् विग्रह).

किंतु यहां यदि श्वेताश्वर उपनिषद्‌के वाक्य, **न तस्य प्रतिमा अस्ति.** (४.९) से वेदमें प्रतिमा-पूजन निषेधका संदेह हो तो यह ठीक नहीं, क्योंकि यहां प्रतिमाका अर्थ मूर्ति है ही नहीं. प्रतिमा शब्दका अर्थ “मुख्यके बराबर, प्रतिकृति या तुलना, प्रतिमान या बिंब, **तोलनसाधनं**- तौलनेका साधन, अथवा मूर्त्यादिकल्पना” अलग-अलग बातोंमें अलग-अलग अर्थोंमें प्रयुक्त होता है. जैसा कि यजुर्वेदके पूर्ण मंत्रको देखनेसे समझा जा सकता है.

न तस्य प्रतिमा ऽअस्ति यस्य नाम महद् यशः।
हिरण्यगर्भऽ इत्य एषः।
मा मा हिम्सीद् इत्य एषा।
यस्मान् न जातऽ इत्य एष ॥

- यजुर्वेद (३२/३)

अर्थ- जिस परमात्माकी महिमाका वर्णन ‘हिरण्यगर्भ’ यजुर्वेद (२५/१०) **‘यस्मान्न जातः’** (यजुर्वेद ८/३) तथा **‘मा मा हिंसीत्’** (यजुर्वेद १२/१०२) आदि मंत्रोंमें

किया गया है **'यस्य नाम महद् यश:'** जिसका नाम और यश ऐसा है कि उसकी तुलनामें कोई नहीं. वही आदित्य है, वही वायु है, चंद्र, शुक्र, जल, प्रजापति और सर्वत्र भी वही है **'न तस्य प्रतिमा अस्ति'** ऐसा अद्वितीय रूप परमात्मा है उसके सदृश कोई और नहीं है.

यही बात महानारायण उपनिषद्के इस श्लोकमें सिद्ध होती है.

नैनमूर्ध्वं न तिर्यंच न मध्येपरिजग्रभत्।

न तस्येशेकश्चन तस्य नाम महद् यश:॥

अर्थ - इस परमात्माकी न तो ऊर्ध्वगामी सीमाको, न ही इसके पारकी सीमाको और न ही इसके मध्य-भागकी, अपनी बुद्धिसे कोई भी व्यक्ति कभी समझ सकता है. उसका नाम महान यशवाला है क्योंकि कोई भी उसकी प्रकृतिको सीमित या नियंत्रित नहीं कर सकता है.

यही अर्थ श्वेताश्वर उपनिषद्के उक्त मंत्रमें भी देखा जा सकता है-

न तत् सम: च अभ्यधिक: च दृष्यते. (६/८)

उसके समान और उससे बड़ा भी कोई नहीं है. और ऐसा इसलिए है क्योंकि परब्रह्म भगवान् **"कृत्सन: प्रज्ञानघन"** (बृहदारण्यकउपनिषद् 4/5/13) हैं, अर्थात भगवान्का शरीर मांस, वसा, नाड़ी आदि रहित अंदर-बाहरके भेदोंसे रहित, प्रज्ञानघन ही है अर्थात आनंदात्मक है. इसीको समझाते हुए केनोपनिषद कहता है-

यद्वाचानभ्युदितं येन वाग्भ्युद्यते. तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥४॥

अर्थ - जो वाणीके द्वारा वर्णित नहीं किया जा सकता, अपितु वाणी ही जिसकी महिमासे प्रकट होती है, उसे ही तुम ब्रह्म समझो. वाणी द्वारा निरूपित जिस तत्त्वकी लोग उपासना करते हैं वह ब्रह्म नहीं है.

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्. तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥५॥

अर्थ - मनसे जिसका मनन नहीं किया जा सकता, अपितु मन जिसकी महत्तासे मनन करता है, उसको ब्रह्म समझो. मन द्वारा मनन किए हुए जिसकी लोग

उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है.

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षुषि पश्यति.
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥६॥

अर्थ - जिसे चक्षुके द्वारा नहीं देखा जा सकता, अपितु चक्षु जिसकी महिमासे देखनेमें सक्षम होता है, उसे तुम ब्रह्म जानो. चक्षुके द्वारा द्रष्टव्य जिस तत्त्वकी लोग उपासना करते हैं वह ब्रह्म नहीं है.

यच्छ्रोत्रेण न श्रृणोति येन श्रोतमिद श्रुतम्.
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥७॥

अर्थ- श्रोत्रसे जिसे नहीं सुना जा सकता, अपितु श्रोत्र जिसकी महत्तासे सुननेमें सक्षम होता है, उसे ही तुम ब्रह्म जानो. श्रोत्रेंद्रियगम्य जिस तत्त्वकी लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है.

यत्प्राणेन न प्राणाति येन प्राण: प्रणीयते.
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥८॥

अर्थ - जो प्राणके द्वारा प्रेरित नहीं होता, किंतु प्राण जिससे प्रेरित होते हैं, उसे ही तुम ब्रह्म जानो. प्राण शक्तिसे क्रियाशील जिस तत्त्वकी लोग उपासना करते हैं वह ब्रह्म नहीं है.

अतः परब्रह्म भगवान् आनंदात्मक हैं जिनके दिव्य स्वरूपकी सीमाकी कल्पना करना भी असंभव हैं. यहाँ यदि कोई यह शंका करे कि क्योंकि मूर्ति तो सीमाओं सहित होती है अतः धातु ,पाषाण, मृत्तिका आदिकी मूर्तिको परब्रह्म नहीं माना जा सकता तो यह ठीक नहीं होग़ा क्योंकि यह आरोप कि *“मूर्ति द्वारा परब्रह्म भगवान् को सीमित किया जा रहा है”* तब ही माना जा सकता है जब किसी एक तत्वसे निर्मिति एक ही प्रतिमाको ब्रह्मका एक मात्र रूप बताया जाता, जिसका निषेध केनोपनिषदके उपरोक्त श्लोकोंमें किया गय़ा हैं. अतः विभिन्न शुभ द्रव्य़ोंसे निर्मित अनंत भक्तोंके घरों व मंदिरोंमें विराजित अनंत विग्रहोंको परब्रह्म भगवान्का स्वरूप मानना उन्हें सीमित करना नहीं अपितु भगवान्की सर्व-सामर्थ्यताकी स्वीकारोक्ति ही है. श्रीभगवान् अनंत

श्रीविग्रहों द्वारा सेवा पूजा स्वीकारनेमें समर्थ हैं अर्थात असीमित रहते हुए भी सीमित रूप धारणकर भक्तके प्रेममय सेवा पूजाको स्वीकारनेमें समर्थ हैं. निषेधाज्ञा तो सीमित द्रव्यमात्रको ही ब्रह्म माननेकी है अर्थात तत्व मात्रको ही ब्रह्म माननेका निषेध है. इसीको आगे और स्पष्ट करते हुए स्कंद पुराण कहता है

शिलाबुद्धिः न कार्या च तत्र नारद कर्हिचिद्।
ज्ञानानन्दात्मको विष्णुः यत्रतिष्ठतिअचिंत्यकृत्॥

तीर्थक्षेत्रस्थितेविष्णौशिलाबुद्धिंकरोति यः।
स यातिनरकंघोरं पुनरावृत्ति वर्जितं॥

अत्रसामान्यतो मूढ़ा हैतुकापापबुद्धयः।
प्रतिमा इति विकल्पन्तेदृष्ट्वाआनंदकंवपु॥

- पांडुरंग महात्म्य, स्कंद पुराण

अतः स्पष्ट है कि भगवन्-मूर्तिमें शिलाबुद्धि अथवा भगवान्के श्रीविग्रहको मात्र पाषाण जानना एक वर्जनीय अपराध है. किंतु भगवान्के माहात्म्यज्ञानको जानते हुए अर्थात भगवान्के सर्वव्यापी, सर्व सामर्थ्यशाली, एवं आनंदमय रूपका ज्ञान रखते हुए प्रतिमाके विकल्पसेकी गई भक्ति युक्त, शास्त्रोक्त विग्रहोपासना सर्वश्रेष्ठ बन जाती है, जिसका विस्तार पूर्वक वर्णन श्रीमद्भागवतके एकादश स्कंधमें देखा जा सकता है.

इसीलिए वेद कहते हैं भगवान्का कोई रूप नहीं (अर्थात मात्र कोई एक ही रूप अथवा प्रतिमा नहीं है) क्योंकि सभी रूप उसीके हैं. उसका कोई एक आकार नहीं क्योंकि सभी आकार उसीके हैं तथा वह सभी आकारोंको धारण करनेमें समर्थ हैं; उसकी कोई मूर्ति नहीं क्योंकि सभी मूर्तियां उसीकी हैं यथा-

यद् एकं अव्यक्तं अनंत रूपं.

(महानारायण उपनिषद् १.५)

यह भी देखा जा सकता है कि परब्रह्म भगवान्का ज्योतिर्मय रूप अव्यक्त

है किन्तु उसी परब्रह्म भगवान्‌के अवतार, देव आदि शास्त्रोक्त रूपोंकी विग्रहोपासना संभव है ही.

स्कंद पुराणके ही उत्कल खंडके पुरुषोत्तम महात्म्य में, ऋग्वेदके मंत्र **“आदो यद् दारु प्लवते”** (१०.१५५.३)को स्वयं श्रीवेदव्यासने दारु ब्रह्म-स्वरूप (साक्षात् भगवान् जगन्नाथ)को दर्शाने वाला बताया है. इसी अर्थकी पुष्टि विद्यारण्य स्वामीने अपने ऋग्वेदभाष्यमें भी की है. इन्हीं कारणोंसे विष्णु धर्मोत्तर पुराण कहता है-

पूजनं प्रतिमायां तु उत्तमम्परिकीर्तितम्।

अतः अनंत आकारों, अनंत रूपों एवं अनंत मूर्तियों द्वारा अपने भक्तोंको अपना अनुभव कराने वाला परब्रह्म ही वैदिक शास्त्रोंके अनुसार एकमात्र उपास्य है. इस प्रकार भगवान्‌के शास्त्रमें वर्णित रूपको दर्शाती भगवन्-मूर्तिकी सेवा-अर्चना साक्षात् भगवान्‌की ही सेवा-अर्चना बन जाती है.

मद्भक्त पूजा अभ्यधिका॥

(श्रीमद्भागवत ११/१९/२१)

इसीको सिद्ध करता महाभारतका निम्न श्लोक भी दृष्टव्य है

नमोस्त्वनंतायसहस्त्रमूर्तये, सहस्त्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्त्रनाम्नेपुरुषायशाश्वते, सहस्त्रकोटि युग धारिणे नमः॥

(महाभारत, विष्णुसहस्रनाम)

इनके अतिरिक्त चाणक्य नीति, अर्थशास्त्र (1.20.2; 2.36.28; 4.13.41; 5.2.39; 7.17.44; 12.5.5; 13.2.25-27; इत्यादि), वराहमिहिर कृत बृहत-संहितामें मूर्तिपूजाका विशद वर्णन प्राप्त होता है जो कि पुराणों एवं आगम शास्त्रोंमें वर्णित मूर्तिपूजाकी प्राचीनताको पुष्ट करता है. उपर्युक्त मंत्रोंका उद्धरण महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजीके वंशज, परम् पूज्य गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमजीने अपने अवतार वादावली ग्रंथमें दिया है.

अतः उपरोक्त प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि, इष्टदेवकी भक्ति परक

विग्रहोपासना वेद आदि शास्त्रोंसे सम्मत है.

इसके साथ ही वैदिक ग्रंथोंमें तथा इतर ग्रंथोंमें भी देवोंके प्रति मनाए जाते अनुष्ठानों, मेलों- महामहोत्सवोंका वर्णन प्राप्त होता है. प्राचीन ग्रंथोंमें इनका उल्लेख प्रायः “यात्रा” (जात्ता) तथा “महा” (महोत्सव) नामसे प्राप्त होता है. यथा कार्तिक-पूर्णिमाके दिन होनेवाले कार्तिक स्नानका वर्णन “गंगामहा”के नामसे पाणिनीय अष्टाध्याईके कशिक भाष्य (५.१.१०९)में प्राप्त होता है. इसी प्रकार महाभारतके खिलभाग हरिवंशमें गिरिराज गोवर्धनके प्रति किए जाते महा-महोत्सवका वर्णन गिरीयज्ञ व गिरियात्राके रूपमें प्राप्त होता है (हरिवंश- २.१७.११ तथा २.१६.१०). इसी प्रकार रैवतक पर्वतहेतु किए जाते महा-महोत्सवका वर्णन गिरीमहाके नामसे हरिवंश (२.१५.५)में प्राप्त होता है. इस प्रकारके महा-महोत्सवका वर्णन जैन तथा बौद्ध ग्रंथोंमें भी ‘महा’ नामसे प्राप्त होता है. जैन आगम ग्रंथ नयधम्मकहा(१.२५)में निम्न महोत्सवका वर्णन प्राप्त होता है

1. इंदामहा इंद्र-महा (इंद्रका त्योहार)
2. खंडमहा-स्कंद-महा (स्कंदका त्योहार)
3. रुद्दजात्ता-रुद्र-यात्रा (रुद्रका त्योहार)
4. शिवजात्ता -यात्रा (शिवका त्योहार)
5. वैस्समनजात्ता-वैश्रवण-यात्रा (वैश्रवण-कुबेरका त्योहार)
6. नागजात्ता नाग-यात्रा (नागाका त्योहार)
7. जख्खजात्ता-यक्ष-यात्रा (यक्षका त्योहार)
8. भूयजात्ता-भूत-यात्रा (भूतका त्योहार)
9. नैजात्ता नदी-यात्रा (नदीका त्योहार)
10. तलायजात्ता ताड़ाग-यात्रा (ताडा़गका त्योहार)
11. रुखखजात्ता वृक्ष-यात्रा (वृक्ष देवताका त्योहार)

12. चैय्यजट्टा-चैत्य-यात्रा (चैत्यका त्योहार)

13. पव्वयजात्ता पर्वत-यात्रा (पर्वत देवताका त्योहार)

14. उज्जानजात्ता-उद्यान-यात्रा (उद्यान देवताका त्योहार)

15. गिरिजात्ता गिरि-यात्रा (पर्वत देवताका त्योहार)

इन सभी महा-महोत्सवोंका वर्णन बौद्ध-ग्रंथ रायपसेनियसुत्तमें भी "महा" नामसे देखा जा सकता है. उक्त बौद्ध सूत्रमें मुकुंदमहा नामसे भगवान् मुकुंद अर्थात कृष्ण हेतु किए जाते महा-महोत्सवका वर्णन भी प्राप्त होता है. इसी प्रकार सुत्तनिपातकी महानिद्देश व्याख्यामें देवताओं आदिके भक्तोंका वर्णन प्राप्त होता है. महानिद्देश व्याख्या (१.८९.३१०)में इन भक्तोंको व्रतिक नामसे संबोधित किया गया है.

1. हत्थिवतिक (हाथी रुपी देवताके उपासक)
2. अस्सवतिक (अश्व अथवा अश्विनी कुमार देवताके उपासक)
3. गोवतिक (वृषभ देवताके उपासक)
4. कुक्कुरवतिक(श्वान देवताके उपासक)
5. काकवतिक (कौवा देवताके उपासक)
6. वसुदेववतिक (भगवान् वासुदेवके उपासक)
7. बलदेववतिक (भगवान् बलदेवके उपासक)
8. पुन्नभद्दवतिक (पूर्णभद्र यक्षके उपासक)
9. मणिभद्दवतिक(मणिभद्र यक्षके उपासक)
10. अग्निवतिक (अग्नि देवके उपासक)
11. सुपन्नवतिक (सुपर्ण यक्ष अथवा पक्षीके उपासक)
12. यख्खवतिक (यक्षके उपासक)
13. असुरवतिका (असुरके उपासक)

14. गंधब्बवतिक (गन्धर्व उपासक)

15. महाराजवतिक (महाराज भगवान् या देवताओं अथवा पुरोहित गुरुओंके उपासक)

16. चण्दिमवतिक (चन्द्र देवके उपासक)

17. सूरीयवतिक (सूर्य देवके उपासक)

18. इंदवतिक (इंद्र देवताके उपासक)

19. ब्रह्मवतिक (ब्रह्मा अथवा ब्राह्मणके उपासक)

20. देववतिक (देवके उपासक)

21. दिसावतिक (दिक्पाल देवताओं या अंतरिक्षके क्षेत्रोंके उपासक)

इसी प्रकार मिलिंद प्रश्न (४.४.३३) नामक प्राचीन बौद्ध-ग्रंथमें भी उस समयके संप्रदायोंका वर्णन प्राप्त होता है.

...Mallā atoṇā pabbatā dhammagiriyā brahmagiriya naṭakā nachchaka langhakā pisachi manibhaddā punṇabhadda chandimasūriya siridevatā kalidavata Sivà Vasudevā- ganikā asipāsā bhaddiputta tesam tesam rahassam tesu tesu ganesu yeva charanti avasesāmnam pihitam. (Milinda-paññā, Vadekar edition, p. 190.)

“महाराज ! संसारमें बहुतसे सम्प्रदाय हैं; जैसे - मल्ल, पर्बत, धर्मगिरिक, ब्रह्मगिरिक, नटक, नृत्यक, लङ्छक, पिशाच, मणिभद्र, पूर्णभद्र, चन्द्र, सूर्य, श्रीदेवता, कलिदेवता, शैव, वासुदेव, धनिका, असिपार्श, भद्रीपुत्र. इन सभीमें अपना कुछ-न-कुछ रहस्य रहता ही है, जिसे वे लोग आपस ही में छिपाकर रखते हैं, दूसरोंको मालूम होने नहीं देते. महाराज ! इसी तरह, पूर्वके बुद्धोंसे ऐसी परिपाटी चली आ रही है ...”.

अतः इन उपरोक्त प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि अपने इष्ट-देवकी भक्ति-परक, महा-महोत्सवों सहित विग्रहोपासना अनवरत रूपसे प्राचीन-कालसे ही चली आ रही है.

3. शैव भक्तिमार्गीय मूर्तिपूजाकी प्राचीनताका ऐतिहासिक प्रमाण

भारतीय सभ्यतामें शैव भक्तिमार्गीय मूर्तिपूजाकी स्थितिका ज्ञान प्राचीन सिंधु-सरस्वती सभ्यताके अवशेषोंको देखनेसे ही चल जाता है. अवशेषोंमें प्राप्त शिवलिंग, स्वास्तिक, यौगिक समाधियोंको देखनेसे उस कालके समाजमें शिवभक्तिका प्राधान्य रहा होगा ऐसा ज्ञात होता है. (चित्र-18,19)

सिंधु-सरस्वती सभ्यतामें शिवलिंग, स्वास्तिक, अग्नि वेदियां, घाट सहित जलाशयों, पशुपति मुहर, ब्रह्मा बैल, अश्वत्थ पत्ती रूपांकनों, चक्र, ओमके चिन्ह, आदिकी प्राप्तिसे भारतीय सभ्यताके अनवरत प्राचीनरूपका पता चलता है क्योंकि संपूर्ण वेदोंमें भी इनका वर्णन प्राप्त होता है.

स्वास्तिकका वर्णन यजुर्वेदमें प्राप्त होता है.

हरिःॐ स्वस्ति न इन्द्रोवृद्धश्रवाः।
स्वस्ति नःपूषाविश्ववेदाः॥
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्योअरिष्टनेमिः।
स्वस्ति नोब्रिहस्पतिर्दधातु ॥
ॐ शान्तिः शान्तिःशान्तिः ॥

अर्थ - “कीर्तिवाले इंद्र हमारा कल्याण करें, विश्वकी ज्ञान स्वरूप पूषा-देव हमारा कल्याण करें, जिनके अस्त्र-शस्त्र अटूट हैं, ऐसे अरिष्टोंको दूर करनेवाले गरुड़ भगवान् हमारा कल्याण करें, बृहस्पति हमारा कल्याण करें.

यजुर्वेदके उक्त स्वास्तिक मंत्रके चार चरणोंका प्रतिनिधित्व ही स्वास्तिककी चार रेखाएं करती है. भारतीय संस्कृतिमें स्वस्तिक चिह्नको विष्णु, सूर्य, गणपति, सृष्टिचक्र तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका प्रतीक भी माना गया है.

ओमका वर्णन मुंडक उपनिषद् एवं कठोपनिषदमें साथ ही भगवत्गीतामें भी प्राप्त होता है. अश्वत्थ वृक्षके महत्वका वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण एवं शतपथ ब्राह्मण तथा तैत्तरीय संहिता व कात्यायन स्मृतिमें भी प्राप्त होता है. वहीं शिवलिंग उपासनाका वर्णन यजुर्वेदके महा नारायणोपनिषदमें भी प्राप्त होता है जो कि वर्तमानमें भी भलीभांति देखा

जा सकता है. कालीबंगा इत्यादि स्थानोंसे प्राप्त साक्ष्य यह दर्शाते हैं कि शिवलिंगकी पूजा 3500 ईसा पूर्वसे 2300 ईसा पूर्व भी होती थी.

शिवलिंगका वर्णन यूं तो अथर्ववेदमें आता है किंतु इसका पूर्ण वर्णन हमें शिव-पुराण एवं लिंग-पुराण आदि पौराणिक ग्रंथोंसे ही प्राप्त होता है. अथर्ववेदमें आते मंत्र भी इन्हीं पौराणिक कथाओंकी ओर इंगित करते हैं जिससे पुराणोंमें वर्णित कथाओंकी प्राचीनता भी सिद्ध होती है.

शिव पुराणमें शिवलिंगकी उत्पत्तिका वर्णन अग्नि-स्तंभके रूपमें किया गया है जो अनादि व अनंत है और जो समस्त कारणोंका कारण है. लिंगोद्भवकी प्रसिद्ध कथामें परमेश्वर शिवने स्वयंको अनादि व अनंत अग्नि-स्तंभके रूपमें ब्रह्मा एवं विष्णुके मध्य प्रकटकर दोनों देवोंको अपने अनादि अनंत रूपका ज्ञान कराया. इसी अग्नि-स्तंभको प्रतिबिंबित करती दीप ज्योतिकी आकृतिमें शिवलिंगकी उपासनाका वर्णन पुराणोंमें प्राप्त होता है. लिङ्गपुराणके अनुसार शिवलिंग निराकार ब्रह्मांडका प्रतीक है और पीठम् ब्रह्मांडको पोषण व सहारा देने वाली सर्वोच्च शक्तिको दर्शाता है.

इसी तरहकी व्याख्या स्कन्द-पुराणमें भी प्राप्त होती है. स्कंद पुराणमें यह कहा गया है “अनंत आकाश (वह महान शून्य जिसमें समस्त ब्रह्मांड बसा है) शिवलिंग है और पृथ्वी उसका आधार (अर्थातयोनि) है.

शिवके इसी रूप अर्थात अग्नि-स्तंभका वर्णन अथर्ववेदमें प्राप्त होता है

यस्यत्रयस् त्रिंशद् देवा अंगे सर्वेसमाहिताः।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥

-(अथर्ववेद कांड १० सूक्त ७ श्लोक १३)

अर्थात: कौन मुझ स्तम्भके बारेमें बता सकता है. जिसके देहमें सभी तैंतीस देवता विराजमान हैं.

स्कम्भोदाधारद्यावा पृथिवीउभेइमेस्कम्भोदाधारोर्वऽन्तरिक्षम्.
स्कम्भोदाधारप्रदिशः षडुर्वीः स्कम्भइदंविश्वंभुवनमाविवेश॥

- (अथर्ववेद कांड १० सूक्त ७ श्लोक ३५)

अर्थात : स्तंभने स्वर्ग, धरती और धरतीके वातावरणको थाम रखा है. स्तंभने 6 दिशाओंको थाम रखा है और यह स्तंभ संपूर्ण ब्रह्मांडमें फैला हुआ है.

इसी प्रकार रूद्र हृदयोपनिषद (श्लोक २३), योगकुण्डलिनी उपनिषद् (१.८१), महानारायण उपनिषद् (१६.१), नृसिंहतापनीय उपनिषद् (अध्याय३), गोपाला तापनी उपनिषद्, ध्यान बिंदु उपनिषद् एवं अमृत बिंदु उपनिषद् इत्यादिमें भी शिवलिंगका वर्णन इसी रूपमें प्राप्त होता है. अपने पाणिनी सूत्रों पर महाभाष्य (४.३.९९)में पतंजलिने पूजा हेतु शिव, स्कंद, विशाकाकी मूर्तियोंके निर्मित होनेका उल्लेख किया है, जो शिवके मूर्ति रूपमें भी प्राचीन कालसे ही पूजित होनेको इंगित करता है. महाभारत (३.८४.१३५)में ज्येष्ठिला नामक तीर्थमें भगवान् विश्वेश्वर सहित उनकी अर्धांगिनी देवी पार्वतीके विग्रहोंके दर्शनका वर्णन आता है. साथ ही धर्मराज-मूर्ति (३.८४.१०२) तथा नंदीश्वर नामक शिव-मूर्ति (१.२५.२१)का भी वर्णन प्राप्त होता है. इनके अतिरिक्त प्राचीन शैवागमोंमें आता शिवलिंग तथा शिवकी मूर्तिपूजाका वर्णन प्रसिद्ध है ही.

इन प्राचीन शिवलिंगोंके अतिरिक्त कई मौर्यकालीन एकमुखी शिवलिंग भी प्राप्त होते हैं. (चित्र-20) जिनसे इतना तो कहा जा सकता है कि मौर्यकाल तक प्राप्त होती वैदिक-पौराणिक शिवलिंग उपासनाकी एक अनवरत परंपरा सिंधु-सरस्वती सभ्यता, मौर्य, शुंग एवं गुप्तकालसे (चित्र-21-22) लेकर वर्तमान भारत तक स्पष्ट रूपसे दिखाई देती है.

4. यक्ष एवं नागोंकी मूर्ति-पूजा

भारतमें मौर्य पूर्वकालसे ही यक्ष एवं नागोंकी मूर्ति पूजाके साक्ष्य प्राप्त होते हैं. बौद्ध ग्रंथोंमें भी नागों एवं यक्षों का वर्णन प्राप्त होनेसे भारतमें यक्ष एवं नागों की मूर्तिपूजाका प्रचलन बौद्ध पूर्वकालका सिद्ध होता है.

यक्षोंका प्राचीनतम वर्णन भी वैदिक साहित्यमें नागों, गंधर्वों, अप्सराओं, राक्षसों एवं देवताओं के साथ ही प्राप्त होता है. गंधर्वोंकी भांति यक्षोंको भी वैदिक

साहित्यमें सुगंध प्रिय बताया गया है. अप्सराओंकी भांति यक्षोंका वर्णन भी अश्वत्थ वृक्षों, नदियों, तालाब एवं वनों के साथ प्राप्त होता है. अप्सरा शब्दकी व्युत्पत्ति अप्सरणीसे हुई है, जिसका अर्थ है जलमें विचरण करने वाला अथवा जलके समान गुण रखने वाला.

अप्सराओंकी भांति यक्षोंको भी नृत्य, गायन, वाद्य यंत्र एवं चौपड़ का खेल अत्यंत प्रिय बताया गया है. प्रसन्न होने पर आकस्मिक भाग्य प्रदान करने वाला एवं रुष्ट होने पर मानसिक विक्षोभ उत्पन्न कर हानि पहुंचाने वाला माना गया है. वैदिक राक्षसों एवं पिशाचों की भांति मदिरा एवं मांस का सेवन करनेवाला बताया गया है.

प्राचीन कालमें यक्षोंकी उपासना देवताके नामसे भी की जाती थी. प्राचीन वृक्षों एवं तड़ागों से संबंधित दैवी शक्तियोंको कई बार देव कहा गया है, जबकि मूलरूपसे इनका संबंध यक्षोंसे है. यक्षका सबसे पहला उल्लेख ऋग्वेदमें मिलता है, लेकिन देवताके रूपमें नहीं. यक्षोंको अच्छे और बुरेके रूपमें परिभाषित करनेवाले रवैयेकी ऋग्वेदमें अस्पष्टता दो अलग-अलग वर्गों द्वारा यक्षोंके प्रति घृणा और उनके समर्थनकी व्याख्या कर सकता है जो कि वैदिक राक्षसों एवं गंधर्वों के समानार्थी ठहरती है. प्राचीन वैदिक-कालसे यक्षोंकी मूर्तिपूजाके प्रमाणोंके कारण कुछ पाश्चात्य शोधकर्ताओंने यक्षोंका मूल एक गैर आर्य भारतीय संस्कृतिके होनेकी सम्भावना जताई थी, किंतु हाल ही के हुए शोध आर्योंके एक स्वतंत्रवर्गके रूपमें होनेकी ऐतिहासिकता पर प्रश्न चिन्ह लगाते हैं. ये शोध अंततः इस बातको पुष्ट करते है कि आर्य शब्दका प्रयोग मात्र एक आस्थावान धर्मावलंबी भद्र पुरुषको इंगित करनेके लिए ही किया जाता था, न कि किसी वर्गके लिए क्योंकि ऐसा कोई वर्ग इतिहासमें कभी हुआ ही नहीं. किंतु यहां इतना कहा जा सकता है कि यक्षोंकी स्थिति लोक-देवताओंकी भांति ही समाजमें व्याप्त थी जिसका कारण प्रसन्न अथवा रूष्ट होने पर मानवोंके साथ तुरंत संवाद स्थापित कर उन्हें तत्काल प्रभावित करनेकी यक्षोंके प्रति सामाजिक मान्यता ही थी.

यक्षोंके प्रति इस लोकमान्यताके कारण परवर्ती- कालमें उत्पन्न बौद्ध एवं जैन साहित्यमें भी इनका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है.

यक्ष शब्दकी व्युत्पत्ति यज् धातुसे मानी गई है, जो इनके “पूजा प्रिय” एवं

“भक्षण प्रिय” होनेको इंगित करता है. रामायण (७.१०४.१२-१३) के अनुसार चतुर्मुखी ब्रह्माने जलकी (अथवा प्रकृतिकी) रक्षा हेतु यक्षोंकी उत्पत्तिकी थी. उत्पत्तिके पश्चात जिन्होंने रक्षामःका उद्घोष किया वे राक्षस कहलाए अर्थात रक्षा करनेवाले (प्रकृतिकी अत्यधिक दोहनसे रक्षा) एवं जिन्होंने यक्षामःका उद्घोष किया वे यक्ष कहलाए (अर्थात् भक्षण करनेवाले अथवा पूजा चाहनेवाले). ब्रह्माण्ड-पुराणके द्वितीय भागके 8 वें अध्याय (श्लोक ३१-३४)में भी इसी कथाका उल्लेख है. वायु-पुराणके अनुसार कश्यप ऋषिके पुत्रोंके रूपमें उत्पन्न होने पर इन्होंने अपनी माताके ही भक्षणका प्रयास किया जिसके कारण पिता कश्यपने इन्हे यक्ष नाम दिया.

यक्षोंका वर्णन ऋग्वेद-संहिता, यजुर्वेद-संहिता (३४.२), अथर्ववेद-संहिता(१०.८.१५), जैमिनीय-ब्राह्मण, एवं कृष्ण यजुर्वेदीय मैत्रायणी संहिता एवं उपनिषद्, गोपथ- ब्राह्मण, केनोपनिषद एवं शतपथ-ब्राह्मणमें भी प्राप्त होता है. महाभारतमें आती यक्षोंकी कथाएं तो प्रसिद्ध हैं ही. इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि यक्षोंकी उत्पत्ति वैदिक-धर्मसे ही हुई. पाणिनी एवं पतंजलि (२.२.३४)ने यक्षों तथा यक्षराज कुबेरकी मूर्तिपूजाका स्पष्ट उल्लेख करते हुए इनके मंदिरोंमें वाद्य यंत्रों सहित गायनका वर्णन किया है. ‘मानव गृह्य सूत्रमें’ भी यक्षोंको चढ़ाए जानेवाले पदार्थों यथा कच्चे चावल, मांस, मछली, पुए, मदिरा, सुगंधी, एवं वस्त्र आदिका वर्णन प्राप्त होता है. यक्षोंकी अप्रतिम सुंदरताका उल्लेख गोभिल गृह्यसूत्र (३.४.२८) तथा द्राह्यायण गृह्यसूत्र (३.१.२५)में भी प्राप्त होता है. वायु-पुराणमें यक्षोंके वृहद परिवारोंका भी वर्णन मिलता है.

<table>
<tr><td colspan="2">वसुरुचि- क्रतुस्थली</td></tr>
<tr><td colspan="2">रजत्नाभ - भद्रा</td></tr>
<tr><td>मणिवर-देवजनी</td><td>मणिभद्र-पुण्यजनी</td></tr>
<tr><td>पुराणभद्र और २८ पुत्र</td><td>२४ पुत्र</td></tr>
<tr><td>हेमरथ, माणिमत, नंदिवर्धन, कुस्तुंबुरु, पिशांगाम, स्थूलकर्ण, महाजय, श्वेत, विपुल, पुष्पवान, भयावह, पद्मपर्ण, सुनेत्र, यक्ष,बाल, बक, कुमुद, क्षेमक, वर्धमान, दम, पद्मनाभ, वरांङ्ग, सुवीर, विजय, कृति, पूर्णमास, हिरण्याक्ष, सुरूप</td><td>सिद्धार्थ, सूर्यतेज, सुमंत, नन्दन, कन्यक, यविक, मणिदत्त, वसु, सर्वानुभूत, संख, पिङ्गाक्ष, भीरु, मंदारशोभि, पद्म, चंद्रप्रभा, मेघपूर्ण, सुभद्रा, प्रद्योत, महौजस, द्युतिमान, केतुमान, मित्र, मौली, सुदर्शन</td></tr>
</table>

दूसरी वंशपरंपरा प्रकार :

<table>
<tr><td>प्रचेता-सुयषा (4 पुत्र)</td><td colspan="4">प्रचेता-सुयषा (4 पुत्रियां)</td></tr>
<tr><td rowspan="2">कंबल, हरिकेश, कांचन, मेघमाली (पुत्)</td><td>लौहेयी (पुत्री)</td><td>भरता (पुत्री)</td><td>कृशांगी (पुत्री)</td><td>विशाला (पुत्री)</td></tr>
<tr><td>लौहेय (यक्षो पशांत)</td><td>भारतेय</td><td>कृषांगेय</td><td>विशालेय</td></tr>
</table>

<table>
<tr><td colspan="2">विश्रवस- देववर्णिनी</td></tr>
<tr><td colspan="2">कुबेर - रिद्धि</td></tr>
<tr><td>नलकूबर, मणिग्रीव (पुत्र)</td><td>पंचालिका (कन्या)</td></tr>
</table>

इसी प्रकार स्कंद-पुराणमें हरिकेश यक्षकी कथा प्राप्त होती है. हरिकेश यक्ष पूर्णभद्र यक्षका पुत्र एवं रत्नभद्र अथवा मणिभद्र यक्षका पोता था. बाल्यकालसे ही शिवभक्त रहे हरिकेशको भगवान् शिवने तपस्यासे प्रसन्न होकर काशीका दंडापाणी नियुक्त किया एवं संभ्रम तथा उद्भ्रमको हरिकेशका सहायक नियुक्त किया.

इसी प्रकार विष्णु-पुराणमें वर्षके 12मासोंमें भगवान् सूर्यका रथ चलानेवाले यक्षोंका वर्णन आता है. वामन-पुराण, वायु-पुराण, महाभारत आदिसे यह कहा जा

सकता है कि प्राचीन भारतके मध्यदेश, कुरुक्षेत्र एवं काशी महाजनपदमें यक्ष-पूजाका काफी प्रचलन था. मथुरा मंडलके भांडीरवनका नाम उक्त क्षेत्रके अधिपति भांडीरयक्षके कारण ही पड़ा था. वर्तमान कालमें भी वास्तु पूजामें बलि दी जाने वाली प्रत्येक वस्तु वास्तवमें "वास्तु यक्ष"के निमित्त ही प्रदानकी जाती है. वास्तु यक्षकी उत्पत्तिका वर्णन मत्स्य-पुराणमें प्राप्त होता है जिसके अनुसार शिवके द्वारा अंधकासुरके वधके पश्चात शिवकी भृकुटीसे वास्तु-यक्षकी उत्पत्ति कही गई है. उत्पत्तिके पश्चात यक्ष संपूर्ण विश्वको निगल जाना चाहता था. किंतु अपने जन्मदाता शिवकी आज्ञासे वह मात्र वास्तु शांति एवं वास्तु पूजामें चढ़ाई जाने वाली वस्तुओंका ही भक्षण करता है.

यक्षोंका वर्णन अदभुत (चमत्कारी), अपूर्व (अज्ञात, रहस्यमय), चित्र (चमत्कारिक)के नामसे भी पुराणों तथा महाभारतमें प्राप्त होता है. ये सभी संबोधन एक ही अर्थकी ओर संकेत करते हैं. यक्षोंको महद्भूत (आदिपर्व २१.१२)के नामसे भी जाना जाता था. आदिपर्वमें इसी सन्दर्भमें इन्द्रको भी इसी नामसे पुकारा गया है और इन्द्र तथा यक्ष दोनोंका उल्लेख राजाके रूपमें किया गया है. महाभारतके आरण्यक पर्वके अध्याय २५८में भी यक्षराजकुबेर अर्थात् वैश्रवणके अमरत्व, अपार धन ऐश्वर्यत्व तथा लोकपालत्वका वर्णन आता है:

पितामहस्तु प्रीतात्मा ददौ वैश्रवणस्य ह ।
अमरत्वं धनेशत्वं लोकपालत्वमेव च ॥ ०१५ ॥

महाभारतके आदिपर्व (१५२.१८)में ही एकचक्र नामके नगरमें भीमद्वारा वक राक्षसके वधके पश्चात समस्त नगर वासियों द्वारा मनाए गए उत्सवका उल्लेख "ब्रह्मा महा" नामसे प्राप्त होता है जोकि "यक्षमहा" काही पर्यायवाची है. महाभारतके उद्योगपर्वके अध्याय ६२में (अध्याय ६४ गीता प्रेस संस्करण) यक्षराज कुबेरको प्रिय अमरत्व प्रदान करनेवाले एक दिव्य पेयका वर्णन आता है. अमृतके साथ यक्षोंका जुड़ाव ही उनकी पूजा और पंथ व आस्थाके लोकप्रिय होनेका मुख्य कारण था. यह अमरपेय एक प्रकारका पीतमधु (पीला शहद) था जो मधुमक्खियों द्वारा निर्मित नहीं किया गया था (मधु पीतममाक्षिकम्). इसे नागोंद्वारा संरक्षित एक घटमें रखा गया था और

कुबेरको यह अत्यन्त प्रिय था. ब्रह्म या यक्ष की उपासना करनेवाले साधकोंकी मान्यता थी, कि उक्त अमृतमधुका पान करनेसे साधक अपनी मृत्यु पर विजय प्राप्त करके अमरता प्राप्त कर सकता है, वृद्ध पुनः युवा हो सभी रोगोंसे मुक्त हो सकता है, नेत्रहीन पुनः देख सकता है तथा सभी इच्छित ऐश्वर्योंको भोग सकता है. इन पुजारियोंको जम्भ-साधकके नामसे जाना जाता था अर्थात जम्भके नामसे प्रचलित लोक-देवताके उपासक, संभवतः यक्षके समकक्ष. महाभारतमें भी यक्ष साधना करनेवाले पुजारियों अथवा ब्राह्मणोंका वर्णन जम्भ-साधकके रूपमें किया गया है. महाभारतके उद्योग पर्वमें जम्भक साधकों तथा कुबेरके प्रिय अमृतमधुका वर्णन इस प्रकार है:

वयं किरातैः सहिता गच्छामो गिरिमुत्तरम् ।
ब्राह्मणैर्देवकल्पैश्च विद्याजम्भकवातिकैः ॥ ०२१ ॥

कुञ्जभूतं गिरिं सर्वमभितो गन्धमादनम् ।
दीप्यमानौषधिगणं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥ ०२२ ॥

तत्र पश्यामहे सर्वे मधु पीतममाक्षिकम् ।
मरुप्रपाते विषमे निविष्टं कुम्भसंमितम् ॥ ०२३ ॥

आशीविषै रक्ष्यमाणं कुबेरदयितं भृशम् ।
यत्प्राश्य पुरुषो मर्त्यो अमरत्वं निगच्छति ॥ ०२४ ॥

अचक्षुर्लभते चक्षुर्वृद्धो भवति वै युवा ।
इति ते कथयन्ति स्म ब्राह्मणा जम्भसाधकाः ॥ ०२५

ततः किरातास्तद्दृष्ट्वा प्रार्थयन्तो महीपते ।
विनेशुर्विषमे तस्मिन्ससर्पे गिरिगह्वरे ॥ ०२६ ॥

अनुवाद: एक समयकी बात है: हम बहुतसे भीलों और देवोपम ब्राह्मणोंके साथ उत्तर-दिशामें गन्धमादन पर्वतपर गये थे. हमारे साथ जो ब्राह्मण थे, उन्हें देवकल्प अर्थात मन्त्र- यन्त्रादिरूप विद्या तथा जम्भ साधन अर्थात यक्ष साधन विधिका ज्ञान था.

समस्त गन्धमादन पर्वत सब ओरसे कुञ्ज-सा जान पड़ता था. वहाँ दिव्य

औषधियाँ प्रकाशित हो रही थीं. सिद्ध और गन्धर्व उस पर्वतपर निवास करते थे.

वहाँ हम सब लोगोंने देखा, पर्वतकी एक दुर्गम गुफामें जहाँसे कोई कूल-किनारा न होनेके कारण गिरनेकी ही अधिक सम्भावना रहती है, एक मधुकोष है. वह मक्खियोंका तैयार किया हुआ नहीं था. उसका रंग सुवर्णके समान पीला था और वह देखनेमें घड़ेके समान जान पड़ता था.

भयंकर विषधर-सर्प उस मधुकी रक्षा करते थे. कुबेरको वह मधु अत्यन्त प्रिय था. हमारे साथी जम्भ-साधक ब्राह्मण- लोग यह बता रहे थे कि इस मधुको पाकर मरण-धर्मा मनुष्य भी अमरत्व प्राप्त कर लेता है. इसको पीनेसे अंधेको दृष्टि मिल जाती है और बूढ़ा भी जवान हो जाता है.

महाराज ! उस समय उस मधुका अद्भुत गुण सुनकर और उसे प्रत्यक्ष देखकर भीलोंने उसे पानेकी चेष्टा की; परंतु सर्पोंसे भरी हुई उस दुर्गम पर्वतगुहामें जाकर वे सब-के-सब नष्ट हो गये.

इस अमर-पेयका पान ही जम्भक पुजारियोंकी गुप्त विद्या थी. ऐसी मान्यता थी कि यह पेय अपने साधक द्वाराकी गई साधनासे प्रसन्न होने पर यक्षराज कुबेर द्वारा अपने उपासकको प्रदान किया जाता है.

बौद्ध-साहित्यमें भी कुबेरको जम्भोंके स्वामी जम्भलके नामसे जाना जाता है तथा पुराणों एवं महाभारतकी ही भांति कुबेरके निवास स्थान जम्भल पुरीको कैलाश पर्वतके समीप ही माना गया है जिसे आज भी तिब्बत (संस्कृत: त्रिविष्टप) आदि प्रदेशोंमें “शम्भल” नामसे जाना जाता है.

महाभारतके अरण्य-पर्वमें राजगृहकी प्रसिद्ध यक्षिणीका वर्णन आता है (अरण्यपर्व ८२.९०). उसका नाम जरा था. सभापर्वमें उक्त यक्षिणीका वर्णन “रक्तपिपासु राक्षसी”के रूपमें किया गया है (सभापर्व १६.३८), जिसे पूजामें मांस चढ़ाया जाता था. वह राक्षसी स्वभावकी थी. इस यक्षिणीने ही जरासंधके भ्रूणके दो कटे हुए हिस्सोंको जोड़ा था. यक्षिणीकी इस कृपासे प्रसन्न होकर जरासंधके पिता बृहद्रथने अपनी प्रजाको जराकी पूजा करने और उस देवीके सम्मानमें हर साल एक

उत्सव मनानेका आदेश दिया. यह भी कहा जाता है कि राजगृहके लोग उन्हें अपने घरकी देवी (गृह-देवी)के रूपमें श्रद्धांजलि देते थे और अपने घरोंकी दीवारों पर उनकी आकृतियाँ चित्रित करते थे, जिसमें उन्हें कई बच्चोंसे घिरा हुआ दिखाया जाता था. यही देवी बौद्ध-धर्ममें हरिती नामसे प्रसिद्ध हुई. उसके बारेमें कहा जाता था कि वह बच्चोंका छिपकर हरण कर लेती थी. उसने जरासंधका भी हरण किया था लेकिन उसे वापस दे दिया. बच्चोंको ले जानेके कारण वह जातहरिणी या हारितीके नामसे जानी जाने लगी. जब बुद्ध राजगृह आये तो लोगोंने उनसे हारितिके आतंकके बारेमें बात की. बुद्धकी कृपासे उसका हृदय मातृ स्नेहसे भर गया. बुद्धने उसे उपदेश दिया और उस दिनसे वह कल्याण करने वाली मंगलकारी देवी बन गई. कुषाण-कालमें मथुरा हारितीकी पूजाका केंद्र था और उसके बाद वह गांधार और मध्य एशिया तक सुगम प्रसव हेतु पूजी जाने वाली लोकप्रिय देवी बन गई. बौद्ध साहित्यके अनुसार, हारिति चेचकके कारण बच्चोंकी मृत्युका कारण बनती थी. वस्तुतः जाता यक्षणीको ही आज भी माता शीतलाके रूपमें पूजा जाता है. कुमारस्वामीके अनुसार उक्त यक्षिणीका एक नाम नंदा था जिसे 'मुस्कुराती चंचल मां' (हिंदी: हसनी खेलनी माता)के रूपमें पूजा जाता है.

महाभारत (वनपर्व ८३.२०८, शल्यपर्व ५३.२४)के अनुसार कुरुक्षेत्रकी पावन भूमि सरस्वती एवं दृषद्वतीके मध्य स्थित है व इस भूमिके चार कोनोंमें चार यक्ष स्थित हैं. यही यक्ष कुरुक्षेत्र भूमिके रक्षक कहलाते थे जिनके नाम अरंतुक, तारांतुक, मचक्रुक और कपिल (रामहृद) थे. इनके बीचकी भूमि कुरुक्षेत्र, समन्तपंचक तथा ब्रह्माकी उत्तर वेदी कहलाती है.

इन चार यक्षोंमेंसे बीड पिपली स्थित यक्षको महाभारतमें तरन्तुक यक्ष कहा गया है. कालान्तरमें तरन्तुक यक्षको रन्तुक यक्ष नामसे जाना गया. वामन-पुराणमें इसी यक्षको रत्नुक यक्ष भी कहा गया है. इस पुराणके अनुसार कुरुक्षेत्रकी यात्रा प्रारम्भ करनेसे पूर्व रत्नुक यक्षके दर्शन करना आवश्यक है क्योंकि यह यक्ष तीर्थ-यात्रियोंके यात्राके दौरान मार्गमें पड़नेवाले विघ्नोंको दूर करते थे. वामन-पुराणके अनुसार इस यक्षका अभिवादन किए बिना कोई भी व्यक्ति कुरुक्षेत्रके तीर्थोंके भ्रमणका अधिकारी नहीं बन सकता था. इस पुराणमें इसे यक्षेन्द्रकी संज्ञा भी दी गई है. वामन पुराणके

अनुसार सरस्वतीके किनारे स्थित इस यक्ष-तीर्थ पर स्नान करनेके उपरान्त यहाँ स्थित मन्दिरके दर्शनके साथ ही कुरुक्षेत्रकी परिक्रमा सफल मानी जाती थी. वर्तमान मे यह तीर्थ चिट्टा मन्दिरके नामसे जाना जाता है यहां पहुँचनेके लिए पिपली-पिहोवा मार्गसे एक उपमार्ग है. सरस्वतीके तट पर स्थित इस तीर्थके निकटसे अनेक पुरातात्त्विक संस्तरण मिले हैं. जिनमें दूसरी सहस्राब्दि ई०पूर्वके धूसर चित्रित मृदभाण्डोंसे लेकर आद्य ऐतिहासिक कालसे मध्य-काल तककी संस्कृतियोंके अवशेष सम्मिलित हैं. इन पुरातात्त्विक प्रमाणोंसे भी इस तीर्थकी प्राचीनता स्वयं सिद्ध होती है.

इसी प्रकार पानीपत जिलेके सींख गांवमें मचक्रुक यक्षका स्थान है. कुरुक्षेत्रके दक्षिणमें प्रवाहित दृषद्वती नदीके किनारे स्थित इस तीर्थकी स्थिति पुराणोंमें वर्णित है. मचक्रुक नामक यह यक्ष कुरुक्षेत्रकी दक्षिणी पूर्वी सीमाका द्वारपाल है. महाभारतके वनपर्वमें इसका वर्णन प्राप्त होता है. तीर्थ परिसरमें एक यक्ष-कुण्ड है. यहाँ प्राचीन-कालमें कोई मन्दिर था जिसकी नींवके अवशेष आज भी तीर्थके दक्षिणी भागमें पाए जाते हैं. यक्ष-कुण्ड तीर्थके पूर्वमें स्थित है.

अरन्तुक यक्षको समर्पित तीर्थ कैथलसे लगभग 26 कि.मी. दूर कैथल-पटियाला जिलोंकी सीमा पर बेहरजख ग्रामके पश्चिममें स्थित है. यहाँ स्थित मन्दिरके बरामदेके साथ लगते हुए एक कक्षमें भगवान् विष्णुकी एक मध्यकालीन प्रतिमा है. बालुका पत्थरकी इस स्थानक विष्णु-प्रतिमाके दाहिने भागके ऊपरी हाथमें गदा व निचला हाथ वरद मुद्रामें है. बाँयें ऊपरी हाथमें चक्र व निचले हाथमें शंख है. मूर्तिके दोनों पाश्र्वोंमें लघु मन्दिराकृतियां उत्कीर्ण हैं. दाँयीं मन्दिराकृतिके नीचे क्रमशः ब्रह्मा, वामन, नृसिंह, वराह, कूर्म एवं मत्स्यावतारको दिखाया गया है जबकि बाँयीं मन्दिराकृतिमें शिव व चैत्योंमें परशुराम, राम, बलराम एवं कल्कि अवतार दिखाए गए हैं.

कपिल यक्षका स्थान पुष्कर तीर्थ जींद-हांसी मार्ग पर जींदसे 14 कि.मी. दूर पोंकरी खेड़ी ग्रामके पश्चिममें स्थित है. इस तीर्थका उल्लेख वामन पुराण, पद्म पुराण तथा महाभारतमें मिलता है. वामन पुराणमें इस तीर्थके निर्माता महर्षि परशुरामको बताया गया है जिस कारण इस स्थानको रामह्रद भी कहा गया है. वामन पुराणके

अनुसार इस तीर्थमें कपिल नामक महायक्ष स्वयं द्वारपालके रूपमें स्थित हैं जो पापियोंके मार्गमें विघ्न डालकर उन्हें दुर्गति प्रदान करते है. महायक्षी उलूखलमेखला नाम वाली उनकी पत्नी भी नित्यप्रति दुन्दुभि बजाते हुए वहाँ भ्रमण करती रहती है.

अथर्ववेदमें यक्षको मात्र महत् विशेषणसे संबोधित किया गया है. "एक शक्तिशाली प्राणी (यक्ष) सृष्टिके केंद्रमें है, क्षेत्रके शासक उसे श्रद्धांजलि देते हैं" (अथर्व वेद १०.८.१५) अन्यत्र अथर्ववेदमें महद-यक्षको महद-ब्रह्माके रूपमें बताया गया है (१.३२.१-४). रामायणमें कहा गया है कि हनुमानको उनकी महान शारीरिक शक्तिके कारण लंकाके राक्षसोंने महद्भूत या यक्ष ही मान लिया था (वाल्मीकि रामायण सुन्दरकाण्ड ४६.६).

यक्षोंको संस्कृत साहित्यमें भी राजाके नामसे वर्णित किया गया है. कालिदासने कुबेरको 'राजराजा' कहा है अर्थात राजाओंका राजा या यक्षोंका राजा (मेघदूत १.३) 'राजन' शब्दकी उत्पत्ति 'रज' धातुसे हुई है जिसका अर्थ है चमकना और यक्षका नाम उसके तेजस्वी दिखने या चलती हुई रोशनीकी तरह चमकनेके कारण पड़ा है. 'महाराजा' विशेषण कुबेरके लिए भी प्रयोग किया जाता है जो कि सर्वोच्च राजा या यक्षका प्रतीक है.

यक्षोंकी लोक-पूजा इस कदर प्रचलित थी कि स्वयं बुद्ध एवं परवर्ती बौद्धोंने भी इनके अस्तित्वको स्वीकार किया. चीन आदि पूर्वी देशोंमें बौद्ध धर्मके पहुंचने पर यह "यक्ष" ही लाफिंग बुद्धाके रूपमें परिणत हो गए.

वनोंमें जानेसे पूर्व चरवाहे यक्षोंको तुष्ट करनेके लिए बलि चढ़ाया करते थे. इस प्रकार नए खेतमें फसल बोनेके पूर्व किसान उस क्षेत्रके यक्ष हेतु चढ़ावा चढ़ाया करते थे.

इसी प्रकार मंदिरों तथा प्रसादोंकी भारी छतका वहन करनेके लिए भी भारवाही यक्षोंका आवाहन किया जाता था.

वाराणसी सहित समस्त पूर्वांचलमें "बीर" नामसे यक्षोंकी पूजा आज भी प्रचलित है. काशी-जनपदमें हरिकेशव यक्षका तीर्थ आज भी 'हरसु बरहम'के नामसे

जाना जाता है. मणिभद्र यक्षकी पूजा “मानिक बीर” नामसे आज भी पूर्वांचलमें यदा कदा देखी जा सकती है. मणिभद्र यक्षको भद्रमणि नामक दुर्लभ दिव्यमणिका प्रदाता माना जाता था, जो कि धारकको सभी प्रकारके मनोवांछित सुख, संपत्ति एवं कई प्रकारकी दैवीय विद्या प्रदान करती थी.

पूर्वांचलके बलिया जिलेके लगभग सभी गांवोंमें बीर-पूजा अर्थात यक्ष-पूजा हेतु निर्मित चौरा आज भी देखा जा सकता है. महाशक्तिशाली यक्षको महाबीर नामसे संबोधित किया जाता था. महाबीरकी साधना प्राचीन यक्ष साधकों द्वारा दीपावलीकी अर्धरात्रिकोकी जाती थी. प्राचीन ग्रंथो यथा भविष्य पुराण, कामसूत्र, जातक कथाओं आदिमें दीपावलीका उल्लेख यक्ष रात्रिके नामसे प्राप्त होता है. दीपावलीकी रात्रिको चौपड़का खेल खेलना तथा संपूर्ण रात्रि जागरण करना इसी प्राचीन यक्ष पूजाका अवशेष है जो कि धनपति यक्षराज कुबेरको प्रसन्न करने हेतु किया जाता था.

मत्स्य पुराणके अनुसार भगवान् शिवके काशी आगमनसे पूर्व समस्त नगरमें यक्ष पूजाका ही प्राधान्य था. डौंडिया बीर (डिंडिम वीर), लहुराबीर(रक्तप्रिय यक्ष), बुल्लाबीर (विपुल-यक्ष), दैतराबीर आदि यक्षोंके स्थानोंका वर्तमान समयमें भी प्राप्त होना, यक्ष पूजाकी प्राचीनताको दर्शाता है. वाराणसीके बाहर हरासू बरह्म (हरिकेश यक्ष), टीकरी गांवमें खोराबीर (खोरक यक्ष)की आज भी होती पूजा इसी अति प्राचीन लोक परम्पराके अनवरत चलते आनेका प्रमाण है. कैलाशवासी यक्षराज धनपति कुबेरके शिव भक्त होनेसे समस्त यक्ष भी स्वाभाविक रूपसे शिवके ही गण माने गए हैं. अतः काशीमें कालांतरमें शिव-पूजाका प्राधान्य हो गया तथा यक्ष-पूजा गौण होती गई.

बौद्ध साहित्यमें यक्षोंका वर्णन भौमदेवता, अमानुष तथा नैवासिक (नगरोंसे इतर वास करनेवाले)के रूपमें आया है. इसी प्रकार जैन साहित्यमें भी यक्षोंका विपुल वर्णन प्राप्त होता है. लिच्छिवि राजधानी वैशालीके नगरद्वार पर घंटायक्षके स्थानका भी वर्णन प्राप्त होता है, जो कि पूजाके बदले, संदिग्ध व्यक्तियों द्वारा नगरमें प्रवेश करने पर अपनी मूर्तिके कंठमें धारण किए घंटेको बजा कर नगरवासियोंको सावधान करता था. इसी प्रकार कपिलवस्तुके बाहर शाक्यवर्धन यक्षके स्थानका भी वर्णन मिलता

है जिसकी पूजा सिद्धार्थ (बुद्ध) अपने माता-पिता सहित करने जाते थे. इसी प्रकार वैशालीके बाहर विशाला यक्ष, पाटलिपुत्रके बाहर पुरुगा यक्षिणी, गयामें शुचिलोम यक्ष, चंपा(भागलपुर)में पूर्णभद्र यक्ष, मिथिलामें मणिभद्र यक्षके स्थानोंका वर्णन प्राप्त होता है. यक्षोंके इन पूजा स्थानोंको यक्षायतन अथवा यक्षभवन कहा जाता था. अश्वघोषने स्वरचित बुद्धचरितके 52वें श्लोकमें तोरणद्वार पर सुसज्जित शालभंजिका यक्षिणीका उल्लेख किया है.

मध्यकालमें लिखे गए कथा सरित्सागरमें कई यक्षों यथा कालजीव्हा, विद्युतजीव्हा, स्थूल शिरास, विरुपाक्ष, अट्टाहास, सुप्रतीक, दीप्त शिखा, धूमकेतु, सत, मणिभद्र, कुबेर, नलकुबेर, पृथुदार आदि यक्षोंका वर्णन मिलता है साथ ही विद्युतप्रभा, मदनमंजरी, श्रृंगोत्पादिनी, सौदामिनी, ज्योतिर्लेखा, धूमलेखा, आदि यक्षिणियोंका वर्णन भी आता है. इसी प्रकार तंत्रोंमें प्रसन्न होने पर साधकको पच्चीस स्वर्ण-मुद्राएं सहज ही प्रदान करने वाली रतिप्रिया यक्षिणि, धन-संपत्ति व दीर्घायु प्रदान करने वाली सुरसुंदरी यक्षीणी, एक सहस्र स्वर्ण-मुद्राएं प्रदान करने वाली अनुरागिनी यक्षिणी, रत्न प्रदान करनेवाली जलवासिनी यक्षिणी, तथा आभूषण व सुंदर वस्त्र प्रदान करनेवाली वटवासिनि यक्षिणीका भी वर्णन प्राप्त होता है.

यक्ष मंदिरोंको यक्षायतन या यक्ष-भवनके नामसे जाना जाता था. लोकभाषामें इन्हें अब भी स्थान या भवनके नामसे जाना जाता है. शुरुआतमें यक्षचैत्य मिट्टी या ईंटके सपाट मंचके आकारवाले मंदिर थे जिन पर खुले आसमानके नीचे यक्षके लिए श्रद्धांजलि या शंक्वाकार प्रतिनिधित्वकी एक पट्टिका स्थापितकी जाती थी.

यक्ष पूजाका दूसरा रूप उनकी मानवरूपी छवियां स्थापित करना था. यक्षोंकी 8से 12 फीट ऊंचाईकी विशाल छवियां, खड़े और बैठे हुए मुद्रामें पाई गई हैं, और वे सभी भारतीय मूर्तियोंके भव्य पूर्वजोंके रूपमें सामने आती हैं. ऐसी कई प्राचीन प्रतिमाएं मिली हैं. इनका काल ईसा पूर्व कई शताब्दी तक जाता है. सिर पर स्पष्ट पगड़ी, गलेमें चपटी माला, छाती पर त्रिकोणीय हार, बांहोंमें बाजूबंद, कलाइयों पर कंगन, कंधे पर दुपट्टा और कटीमें बंधी हुई पट्टीसे बंधी धोती. दोनों भुजाओंमेंसे दाहिना उठा हुआ और बायाँ लटका हुआ - यह यक्ष प्रतिमाओंका रूप है. बादके समयकी

बोधिसत्व और विष्णुकी छवियां इसी प्रकार उकेरी गईं. ऐसी सभी मूर्तियोंमेंसे एक मथुराके परखम गांवकी है. (चित्र-24,25,26)

वर्तमान समयमें मथुरा जिलेके परखम गांवमें आज भी जखैन अर्थात् यक्षका मेला लगता है, जिसमें एक यक्षकी प्राचीन प्रतिमाको पूज कर बच्चोंकी रक्षाकी मन्नत मांगी जाती है. जखैन यक्षका एक हस्त कुछ पकड़े हुए प्रतीत होता है जबकि दूसरा हस्त अभय वरद मुद्रामें ऊपर उठा हुआ है. इसी प्रकार यक्षोंके कई विग्रह देखे जा सकते है. यहभी कहा जाता है कि इसी गाँव में एक प्राचीन बलराम जी का मंदिर था जहां बलराम द्वारा शंखचूड़ राक्षस का वध किया गया था.

परखम यक्षके आसन पर उकेरे गए शिलालेखसे पता चलता है कि यह मणिभद्र यक्षकी छवि है. लोकप्रियतामें मणिभद्र यक्षका स्थान कुबेरके बाद था और उन्हें कारवां व्यापारियोंके इष्टदेवके रूपमें माना जाता था, ग्वालियरमें पद्मावती या पवैया मणिभद्र पूजाका केंद्र था, जहां व्यापारियोंका एक संघ इस यक्षको समर्पित था और जिसने वहां उनकी मूर्ति स्थापितकी थी. अन्य मूर्तियोंमें मथुरा जिलेके बड़ौदा गांवमें मिली एक विशाल छवि है. झिंग-का-नगरा गाँवमें यक्षीकी एक आदमकद बैठी हुई छवि अभी भी पूजित है. इसी प्रकार भरतपुरसे चार मील दूर नोह गांवमें यक्षकी एक स्वतंत्र प्रतिमा आज भी 'जखा'के नामसे पूजी जाती है. पालिपुत्रमें मौर्यकालीन पॉलिश वाली दो यक्ष मूर्तियाँ भी प्राप्त हुईं हैं.(चित्र-23 दीदरगंज यक्षिणी). वाराणसीके पास राजघाट पर तीन मुखवाले यक्षकी एक मिश्रित मूर्ति भी प्राप्त हुई थी. उड़ीसाके शिशुपालगढ़में भी कई यक्ष प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं हैं. इसी प्रकार विदिशा और वेत्रवती (बेस और बेतवा) नदियोंके संगम पर एक यक्ष प्रतिमा (12 फीट ऊँची) मिली थी.

यक्षिणियोंका चित्रण बहुधा प्रकृतिसे संबद्ध होनेके कारण वृक्षोंके साथ अथवा वृक्षकी शाखा पकड़े हुए किया जाता था. (चित्र-27,28,29). ऐसी यक्षिणियोंको शालभंजिका कहा जाता था. शालभंजिका यक्षिणीका छोटा रूप हिंडोला तोरण पर भी देखा जा सकता है. मायादेवी द्वारा वृक्षकी शाखाको पकड़े हुए सिद्धार्थको जन्म देने कारण शालभंजिका यक्षिणियोंका बौद्धमतमें भी विपुल चित्रण प्राप्त होता है. प्राचीन

शहर श्रावस्तीमें शालभंजिका उत्सव भी बड़े हर्षोल्लासके साथ मनाया जाता था, जब सालके पेड़ पर फूल आते थे. (एम.एस.रंधावा, और डी.एस. रंधावा, भारतीय मूर्तिकला, बॉम्बे, 1985, पृष्ठ-54)

यक्षिणियोंकी साधनाका विषद विवरण शाक्त तंत्र-ग्रन्थोंमें प्राप्त होता है. मांस, मदिरा, अस्थि, हीन पशुबली आदिके साधनामें विनियोगसे इन्हें वेद-बाह्य वामाचार कहा गया. तंत्र ग्रन्थों यथा कामरत्न तंत्र, गुह्य समाज तंत्र, जयाख्य संहिता (महा यक्षिणी साधन), भूतडामरतन्त्र, मंजूश्रीमूलकल्प आदिमें कई यक्षिणियोंकी सिद्धि हेतु तांत्रिक क्रियाओंका वर्णन मिलता है.

इसी प्रकार यक्षोंकी पूजा संपूर्ण भारतमें देखी जा सकती है. वर्तमान कर्नाटकके उत्तर कन्नडा जिलेमें हयगुंडा नामक टापू पर आज भी यक्षकी पूजा देखी जा सकती है. (चित्र-30). लोक मान्यताके अनुसार हयगुंडा टापूका यक्ष, पूजाके बदलेमें गांववालोंकी रक्षा करता आया है. संभावित खतरेसे गांववालोंको सावधान करनेके लिए यह यक्ष कुकू पक्षीके रूपमें उद्घोष कर गांवको समय पर चेतावनी देता है. वस्तुतः उत्तर कन्नड़ा, दक्षिण कन्नड़ा सहित केरल पर्यंत संपूर्ण पश्चिमी घाटके क्षेत्रमें भूत कोला, थैयम आदि द्वारा यक्ष पूजा आज भी देखी जा सकती है.

इसी प्रकार प्राचीन-कालसे ही नागोंकी पूजा सहित बलरामजीकी स्वतंत्रता पूजा उपासनाके भी प्रमाण मिलते हैं. पुराणोंमें प्राप्त होते नागोंका नाम सहित विवरण बौद्ध एवं जैन ग्रंथोंमें भी प्राप्त होता है जो नागोंकी पूजाको बुद्ध पूर्वकालका सिद्ध करता है. अथर्ववेदमें भी कई सारे नाग देवताओंका नाम प्राप्त होता है. अथर्ववेदमें नागोंका वर्णन गंधर्वों, यक्षों तथा पितरोंके साथ ही किया गया है. एरावत नागके पुत्र धृतराष्ट्र नागका वर्णन अथर्ववेदमें प्राप्त होता है जो कि महाभारतके अनुसार नागोंमें सर्वश्रेष्ठ कहा गया है. ऋग्वेदमें इंद्रदेवके परम शत्रुके रूपमें वृतृ का वर्णन भी अहि अर्थात नागके रूपमें किया गया है. गृह्यसूत्रोंमें भी सर्पबलिके रूपमें नागपूजाका ही उल्लेख मिलता है. बौद्ध परंपराकी बात करें तो चुल्लवग्गमें एक जनजाति अहिराज-कुलनिका उल्लेख मिलता है तथा चार नाग राजाओंके नाम विरुपाक्ष, एरापत्र (इलापुत्र), छब्यपुत्र और कान्हागोतमक भी उल्लेखित है. भविष्य पुराणके ब्रह्म-पर्वमें भी मनुष्योंको अभय प्रदान

करनेवाले आठ प्रमुख नागोंका वर्णन प्राप्त होता है वासुकि, तक्षक, कालियानाग, मणिभद्र, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक तथा धनंजय. अगले अध्यायमें वर्षके 12 महीनेमें आने वाली पंचमीको पूजे जानेवाले 12 नागोंके नाम भी प्राप्त होते हैं. क्रमशः अनंत, वासुकी, शङ्ख, पद्म, कंबल, कर्कोटक, अश्वत, धृतराष्ट्र, शङ्खपाल, कालिय, तक्षक और पिंगल नामक नाग (पूजनके लिए) बताये गये हैं. अतः सिद्ध होता है कि प्राचीन-कालसे ही भारतमें नागोंकी पूजाका प्रचलन था जो कि वेद ,पुराण आदि वैदिक-शास्त्रोंसे सम्मत है. इसका समर्थन कई पुरातात्विक साक्ष्योंसे भी होता है.

व्रजके सौंखगांवमें नागोंके कुषाण कालीन मंदिर प्राप्त हुए हैं. मथुराके जमालपुर टीलेसे भी नागोंके प्राचीन पूजा-स्थलके प्रमाण प्राप्त हुए हैं. जमालपुर टीले पर स्थित प्राचीन बौद्ध विहार जो कि हुविष्क द्वारा स्थापित था, के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं. व इसके साथ ही दधिकर्ण नाग हेतु दान किए गए एक पाषाण शिलालेखकी प्राप्ति इनके प्राचीन सह-अस्तित्वको सिद्ध करती है. इसका उल्लेख ग्राउस द्वारा अपने जिला संस्मरणमें भी किया गया है.

1908में पं. राधाकृष्णनने चारगाँवसे (चित्र-31) एक आदमकद छवि प्राप्तकी जिसे उन्होंने नाग-प्रतिमा कहा. इस नाग प्रतिमामें देवताको अपना दाहिना हाथ सिरके ऊपर उठाकर वार करनेके लिए (अथवा अभय वरद मुद्रा में) तैयार दिखाया गया है. यह प्रतिमा एक धोती और एक ऊपरी वस्त्र तथा एक हार धारण किए हुए है. प्रतिमाके शिरोभागके ऊपर सात सिरोंवाले सांपका फन है. मूर्तिके पीछेके शिलालेखमें कुषाण राजा हुविष्कके शासनकालके दौरान दो व्यक्तियों द्वारा इस छविकी स्थापनाका उल्लेख है. इसे कुषाण-कालका बताया जा सकता है जिसकी पुष्टि उस शिलालेखसे भी होती है, जिसमें कुषाण राजा हुविष्कके शासनकालमें नागोंके इस स्वामी (संभवतः बलरामसे संबंधित)को दिए गए दानका वर्णन है. ऐसा प्रतीत होता है कि चारगांव छविने कुछ हद तक मथुराकी स्वतंत्र नाग छवियोंके लिए एक निश्चित प्रतीकात्मक परंपरा प्रदानकी है, क्योंकि इस क्षेत्रके आसपाससे कई समान प्रतिमाएं प्राप्त हुई थी. ग्राऊसने सादाबाद तहसीलसे एक नागमूर्ति प्राप्तकी थी, जो चारगांवकी छविकी तुलनामें बेहतर संरक्षणकी स्थितिमें थी, जिसमें बाएं हाथमें लिया हुआ पात्र बहुत स्पष्ट

है, और अन्य सभी प्रतिमाओंकी तरह सात-फन वाला नाग शिरो-भागके ऊपर दृष्टिगोचर है. किंतु इन प्रतिमाओंको नाग प्रतिमा कहना तृटिपूर्ण ही था क्योंकि हाथमें वारुणीका पात्र तथा दूसरा हस्त अभय वरद मुद्रामें ऊपर उठा होना व शेषनागका अवतार होनेसे सात फनोंवाले नागका पृष्ठभागमें होना यह तो बलरामकी प्रतिमाके लक्षण शास्त्रोंमें बताए गए हैं एवं ऐसी ही कई और भी बलरामकी प्रतिमाएं प्राप्त हुई ही हैं. (चित्र-46,47,48,49,50) एक अन्य नाग प्रतिमा व्रजके खामिनी ग्रामसे प्राप्त हुई थी और एक अन्य जो वर्तमान मथुरा शहरमें दाऊजीके मंदिरसे खरीदी गई थी, जिसे स्थानीय पुजारी दाऊजीकी प्रतिमाके रूपमें ही पूज रहे थे. छवि पर शिलालेखसे यह निर्धारित किया गया था कि यह प्रतिमा कुषाण-कालकी थी. वोगेल प्रभृति शोधकर्ताओंके अनुसार व्रज क्षेत्रकी बलराम प्रतिमाएं चारगांव नाग प्रतिमाको आधार रख कर निर्मितकी गई हैं. किंतु इसका विपरीत क्यों नहीं, अर्थात शेष अवतार बलरामका अनुकरण नाग प्रतिमाओंमें क्यों नहीं हो सकता, इस पर कोई भी तर्क शोधकर्ताओं द्वारा नहीं दिया गया है.

कुछ किंवदंतियोंमें हलधर बलरामको एक कृषि देवताके रूपमें भी चित्रित किया जाता है. बलरामके कृषि देवता होनेके इस पहलूकी समानताएं प्राचीन नाग प्रतिमाओंमें भी देखी जा सकती हैं, जो कृषिके लिए सबसे महत्वपूर्ण तत्व पानीसे निकटतासे जुड़े हुए थे. इन दो विशेषताओं - वारुणीका उपयोग और कृषिके साथ जुड़ावने बलरामकी छवियोंको आकार दिया है, जिसमें उन्हें एक नागदेवताके रूपमें चित्रित किया गया है, जो अपने बाएं हाथमें एक वारुणी पत्र और अपने कंधे पर एक हल धारण किए हुए होते हैं. नागा छवियों पर लगभग सभी शिलालेख कुषाण-कालके हैं और इनमें कुषाण शासकों, मुख्य रूपसे कनिष्क और हुविष्कके नामोंका उल्लेख है.

यह भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि मथुरामें नाग-पंथ अत्यंत स्थानीय या क्षेत्रीय प्रकृतिका था. मथुरामें नाग देवताओंका मूर्तिकला प्रतिनिधित्व भी बेहद विविध है और इसमें अलग-अलग खड़ी नाग आकृतियाँ, साथ ही नाग और नागीसे अंकित पट्टिकाएँ शामिल हैं, जिन्हें कभी-कभी उपासकोंके एक समूह द्वारा पूजा स्वीकारते चित्रित किया गया है. ध्रुव-टीला स्थलसे प्राप्त नाग-नागी पट्टिका हाथमें पानीके बर्तन लिए एक

साथ खड़ी दो आकृतियोंका प्रतिनिधित्व करती है. कुषाण-कालकी एक ऐसी ही मूर्ति, मथुराके राल भदर स्थलसे मिली है, जहां एक नाग आकृति है जिसके दोनों ओर दो महिला नागिन और दो बच्चे हैं. यमुना नदीसे प्राप्त बिना सिर वाली नाग आकृतिमें कुषाण ब्राह्मीमें उत्कीर्ण शिलालेखमें 'दधिकर्ण' नाम लिखा है, जो संभवतः देवताका नाम था. इसलिए यह छवि भी उसी स्थलकी रही होगी और उक्त नागदेवताका प्रतिनिधित्व करती होगी. नाग-भूमोका उल्लेख राल भदर पट्टिकामें किया गया है.

व्रजके सौंख गांवमें भी एक नाग प्रतीमा देखी जा सकती है जिसे वर्तमानमें चामुंडा देवी मानकर पूजा जाता है. किंतु पृष्ठ भागमें नाग फनोंको स्पष्ट देखा सकता है. (चित्र-32)

5.वैष्णव भक्तिमार्गीय मूर्ति-पूजाकी प्राचीनताका ऐतिहासिक प्रमाण

परंपरागत रूपसे तो शिव एवं विष्णु की भक्ति उतनी ही प्राचीन मानी जाती रही है जितनी कि भारतीय सभ्यता. किंतु ऐतिहासिक रूपसे विष्णु-भक्तिके पुरातात्विक प्रमाणोंके ऊपर उतना प्रकाश नहीं पहुंचा है जितना कि शिव-भक्तिके प्रमाण मिलते हैं. वैदिक साहित्यमें यथा संहिताओं, उपनिषद् आदि वैदिक-ग्रंथोंमें आते शिव एवं विष्णु के वर्णनसे वैदिक-कालसे ही इनकी भक्तिके चलते आनेका प्रमाण मिलता है. वेदोंमें सर्वव्यापक परम-तत्त्वको विष्णु कहा गया है. विष्णुका परम पद, परम धाम दिव्य आकाशमें स्थित एवं सूर्यके समान दैदीप्यमान माना गया है –

'तद्विष्णोः परमंपदं सदापश्यन्तिसूरयः. दिवीयचक्षुराततम्

(ऋग्वेद १/२२/२०)

विष्णु अजय गोप हैं, गोपाल हैं, रक्षक हैं और उनके गोलोक धाममें गायें हैं – **'विष्णुर्गोपा'** अदाभ्यः (ऋग्वेद १/२२/१८) 'यत्र गावो भूरिश्रृंगाआयासः (ऋग्वेद १/१५). विष्णु ही श्रीकृष्ण वासुदेव, नारायण आदि नामोंसे परवर्ती युगमें लोकप्रिय हुए. ब्राह्मण ग्रन्थोंमें इन्हीं विष्णुको यज्ञके रूपमें माना गया – **'यज्ञो व विष्णुः'**. तैत्तिरीय

संहिता, शतपथ ब्राह्मण और ऐतरेय ब्राह्मणमें इन्हें त्रिविक्रम रूपसे भी प्रस्तुत किया गया है, जिनकी कथा पुराणोंमें वामन-अवतारके रूपमें मिलती है. विष्णुके उपासक, भक्त वैष्णव कहे जाते हैं. विष्णुको अनन्त ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य रूप 'भग'से सम्पन्न होनेके कारण भगवान् या भगवत् कहा जाता है. इस कारण वैष्णवोंको भागवत नामसे भी जाना जाता है, भागवत – जो भगवद्भक्त हो. पाणिनिके पूर्व भी तैत्तिरीय आरण्यकमें विष्णु गायत्रीमें विष्णु, नारायण और वासुदेवकी एकरूपता दर्शायी गयी है – **'नारायणायविद्मेह-वासुदेवाय धीमहि तन्नोंविष्णुः प्रचोदयात्'**. यही मंत्र महानारायण उपनिषदमें भी प्राप्त होता है. बौधायन धर्मसूत्र (द्वितीय प्रश्न, पंचमअध्याय, २४वें पाठ) में भी भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णको नारायण, विष्णु आदि नामोंसे संबोधित किया गया है. जिससे इनकी एकरूपता सिद्ध होती है.

ओम केशवं त. नारायणं त. माधवं त. गोविंदं त. विष्णुं त. मधुसूदनं त.
त्रिविक्रं त. वामनं त. श्रीधरं त. हृषिकेशं त. पद्मनाभं त. दामोदरं त. श्रियं
देवीं त. सरस्वतीं देवीं त. पुष्टि देवीं त. तुष्टि देवीं त. विष्णुं त. गरुत्मन्तं त.
विष्णु पार्षदांस्त. विष्णुपार्षदीश्च तर्पयामी..

(बौधा. सूत्र २.५.२४)

परब्रह्म भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण एवं श्रीहरि विष्णुका प्राचीनतम उल्लेख वैदिक साहित्य यथा गोपालतापिन्युपनिषद, शतपथब्रह्मण, ऐतरेय आरण्यकसहित पुराणों, पांचरात्र आगम शास्त्रों, एवं वेदांगो यथा यास्कआचार्य द्वारा लिखित निरुक्त (अक्रूरो ददाते मणिम्-२.१.२) तथा महाभारतके साथ साथ कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र (यथा- वंदे कृष्ण कंस उपचारम १४.३.४४, एवं श्लोक १.६.४-१० में आता वृष्णी कुलके नाशका वर्णन) प्रभृत प्राचीन संस्कृत-साहित्यमें भी प्राप्त होता है. इन वर्णनोंके कुछ न्यूनाधिक भेदके साथ बौद्ध एवं जैन ग्रंथो में प्राप्ति इसकी ऐतिहासिक सत्यताको पुष्ट करती है.

ऋग्वेदमें एक मंत्रद्रष्टा ऋषिके रूपमें देवकी-पुत्र कृष्णका उल्लेख हुआ है, जो घोर आंगिरस ऋषिके शिष्य थे. सायणभाष्यमें भी इन्हें "अंगिरसकृष्ण" कहा गया

है- कृष्णोनामांगिरसऋषिः। ऋग्वेदमें कृष्णके विश्वक नामक पुत्रका उल्लेख हुआ है, जो ऋषि कृष्णके साथ मंत्रद्रष्टा ऋषि हैं (ऋग्वेद -८/८६/३), यह भी उल्लेख आता है कि अश्वनी कुमारोंने विश्वकके नष्ट पुत्र विष्णाप्वकी रक्षाकी थी और उसके पिता विश्वकसे मिलवाया था (ऋग्वेद- १/११७/७ तथा १.११६.२३). कौषीतकि ब्राह्मणमें "घोर अंगिरस"के साथ ही "अंगिरस कृष्ण"का भी उल्लेख किया गया है- कृष्णो ह तदङ्गिरसो- ब्राह्मणानछन्दसिय- तृतीयं सवनंददर्श. ऐतरेय आरण्यकमें "कृष्णहरित" नामक उपदेशकका उल्लेख मिलता है. छान्दोग्य उपनिषदमें वर्णित है कि घोर अंगिरस नामक ऋषिने "देवकी पुत्र कृष्ण"को दक्षिणा प्रधान यज्ञकी अपेक्षा अहिंसा प्रधान यज्ञका प्रतिपादन किया है. दान, तप और सत्य को इसकी दक्षिणा कहा गया है (छा. उप. ३.१७.४). यद्यपि छांदोग्य उपनिषदमें घोर आंगिरसके शिष्यके रूपमें किया गया, "देवकी पुत्र कृष्ण"का उल्लेख कुछ आधुनिक विद्वान भागवत धर्मके उपास्य "वासुदेव श्रीकृष्ण"का प्राचिनतम वैदिक उद्धरण मानते हैं. किंतु यह वर्णन वैष्णव-संप्रदायों उपास्य भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णका है ऐसा वैष्णव आचार्योंका मत नहीं है. क्योंकि भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण, चंद्रवंशी यदुकुलकी वृष्णिवंशीय शाखामें प्रकट हुए थे, जिनका वर्णन कहीं भी मंत्रद्रष्टा ऋषिके रूपमें प्राप्त नहीं होता है; अपितु समस्त वैदिक मंत्रों एवम यज्ञों द्वारा ऋषि मुनि जिनकी उपासना करते हैं, वे साक्षात् परमेश्वर भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण थे ऐसा ही वर्णन प्राप्त होता है.

ऋग्वेदमें कृष्ण नामका उल्लेख दो रूपोंमें मिलता है— एक पूर्वोक्त "कृष्ण आंगिरस", जो सोमपानके लिए अश्विनी कुमारोंका आवाहन करते हैं और दूसरे कृष्ण नामका एक असुर, जो अपनी दस सहस्र सेनाओंके साथ अंशुमती तटवर्ती प्रदेशमें रहता था और इन्द्र द्वारा पराजित हुआ था. भंडारकर आदि कुछ आधुनिक विद्वान यमुनाको अंशुमति नदी मान इन्द्रके शत्रु असुर कृष्णको भी भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णका वर्णन माननेकी भूल कर गए हैं. किन्तु यमुना और अंशुमतीका एक ही नदीके रूपमें वर्णन ऋग्वेद आदि किसी भी ग्रन्थमें प्राप्त नहीं है. अपितु अलग-अलग नदियोंके रूपमें ही इन दोनोंका वर्णन प्राप्त है. स्कंध पुराणके अनुसार यह अंशुमतीनदी गुजरात स्थित प्रभास क्षेत्रमें स्थित थी. स्कन्द पुराणम्- खण्डः ७ (प्रभासखण्डः)/ प्रभास क्षेत्र माहात्म्यम्/

अध्यायः ३४४में आता है-

॥ ईश्वर उवाच ॥ ॥

ततो गच्छेन्महादेवि लिंगंपापप्रणाशनम् ॥
कपिलेश्वरस्यैशान्यामुत्तरेण व्यवस्थितम् ॥ १ ॥

जरद्गवेश्वरंनाम जरद्गव प्रतिष्ठितम् ॥
ब्रह्महत्यादिपापानां नाशनं नात्रसंशयः ॥ २ ॥

तत्रैवसंस्थितादेवि देवी अंशुमती नदी ॥
तत्रस्नात्वा विधानेन पिंडदानं तुदापयेत्॥ ३ ॥

वर्षकोटिशतं साग्रं पितृणां तृप्तिमावहेत् ॥
वृषभस्तत्र दातव्यो ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ ४ ॥

ततस्तु पूजयेद्देवं गन्धपुष्पैर्जरद्गवम् ॥
पञ्चामृतरसेनैव तथा गुग्गुलुधूपनैः ॥ ५ ॥

स्तुतिदण्डनमस्कारैःप्रदक्षिणैरहर्निशम् ॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्तत्र भक्ष्यभोज्यैः पृथग्विधैः ॥
एकेन भोजितेनैव कोटिर्भवति भोजिता ॥ ६ ॥

कृते सिद्धोदकं नाम तत्तीर्थंपरिकीर्त्तितम् ॥
जरद्गवेश्वरं तीर्थं कलौ तु परिकीर्त्यते ॥ ७ ॥

॥ इति॥

श्रीस्कांदेमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां सप्तमे प्रभासखण्डेप्रथमेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येंऽशुमतीमाहात्म्येचतुश्चत्वारिंशदुत्तरत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४४ ॥

उपर्युक्त वर्णन प्राप्त होने पर भी यमुनाको अंशुमतिका पर्यायवाची मानना एक दुराग्रह ही सिद्ध होता है. साथ ही इन्द्र द्वारा असुर कृष्णके परिवार सहित वधका वर्णन, किसी भी प्रकार भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णसे साम्य नहीं रखता. अतः स्पष्ट है कि ऋग्वेदमें आता अंशुमती नदीके तट पर निवास करनेवाले असुर कृष्णका वर्णन किसी

भी प्रकार भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णका वर्णन नहीं कहा जा सकता है.

विष्णु भक्तिके पुरातात्विक प्रमाण भारतमें इतने प्राचीन तो नहीं मिले अथवा जो प्रमाण मिले वे अधिक प्राचीन नहीं माने गए किंतु वियतनाममें 2000 ईसा पूर्वकी विष्णु प्रतिमाकी प्राप्तिसे भारतमें वैष्णव भक्तिमार्गकी स्थितिका अनुमान लगाया जा सकता है. (चित्र-33) क्योंकि संपूर्ण दक्षिण पूर्वी एशियाके देशोंमें वैदिक-धर्मका प्रचार प्रसार भारतसे ही हुआ. अतः कहा जा सकता है कि वियतनाम पहुंचनेसे कई वर्ष पहले ही वैष्णव भक्तिमार्गी संप्रदायोंका अस्तित्व भारतमें रहा होगा.

वियतनामकी केंद्रीय समिति (CPVCC)की कम्युनिस्ट-पार्टीकी एक प्रेस विज्ञप्तिके अनुसार विष्णुकी मूर्तिको “4000-3500 वर्ष प्राचीन OcEo संस्कृतिकी विष्णु प्रतिमाके मस्तक”के रूपमें वर्णित किया गया है. हाल ही में वियतनाम सरकारने अपने आधिकारिक कम्युनिस्ट सिद्धांतके बावजूद, वियतनामकी प्राचीन धार्मिक विरासतको उजागर करनेवाले कई कार्यक्रम और परियोजनाएं विकसितकी हैं. इसके विद्वतापूर्ण और पुरातत्व अनुसंधान और जांच वैध हैं और इसके निष्कर्ष आधिकारिक हैं. 4000से 3500 साल पुरानी विष्णु मूर्तिकी यह खोज वास्तवमें ऐतिहासिक है और यह न केवल हिंदू धर्म बल्कि पूरे विश्वके इतिहासकी हमारी समझ पर नई रोशनी डालती है.

विष्णु प्रतिमाकी खोज वैदिक सभ्यता एवं भारतीय इतिहास दोनोंके विकासके संबंधमें प्रचलित वर्तमान ऐतिहासिक समय-रेखा पर प्रश्न चिन्ह खड़े करती है. आधुनिक भारत ही प्राचीन कालसे उन्नत वैदिक सभ्यता और संस्कृति का केंद्र रहा है. अतः यह तर्क दिया जा सकता है कि यदि प्रागैतिहासिक कालीन वियतनाममें 4000 वर्ष पूर्व वैष्णव मूर्तिपूजा- उपासना प्रचलित थी तो यह निसंदेह प्राचीन भारतमें भी फल फूल रही होगी.

प्राचीन भारतका सबसे महत्वपूर्ण और प्रारंभिक गैर-भारतीय साहित्यिक रिकॉर्ड मेगस्थनीज़ द्वारा लिखित पुस्तक इंडिकामें मिलता है. तीसरी शताब्दी ईसा पूर्वमें मेगस्थनीज़ने भारतकी यात्रा की. तक्षशिलाके राजाने उन्हें महान सम्राट चंद्रगुप्तके पाटलिपुत्रमें शाही दरबारमें राजदूत नियुक्त किया था. जाहिर है कि वहाँ रहते हुए,

मेगस्थनीज़ने जो कुछ सुना और देखा, उस पर विस्तारसे लिखा. दुर्भाग्य से, मेगस्थनीज़की कोई भी मूल-पुस्तक समयके कहरसे नहीं बच पाई. हालांकि, मेगस्थनीज़के प्रारंभिक ग्रीक और रोमन टिप्पणीकारों, जैसे एरियन, डियोडोरस और स्ट्रैबोके माध्यम से, उनके मूलकार्यके अंश आज हमारे पास उपलब्ध हैं, साथ ही मेगस्थनीज़के सामान्य संदेश भी हैं. मेगस्थनीज़ने हेराक्लीज़के छद्म नामके तहत कृष्णके बारेमें ही लिखा है- “हेराक्लीज़”, (या कृष्ण)को उस क्षेत्र (saurasenoi) अर्थात शूरसेन महाजनपदमें भगवान्‌के रूपमें पूजा जाता था जहांसे यमुना (Jamones) नदी बहती है.

महान व्याकरणविद् और योग-सूत्रके लेखक पतंजलीने, जिनका काल दूसरी शताब्दी ईसा पूर्वके लगभग माना गया है, लिखा है कि कृष्णने बहुत दूर अतीतमें अत्याचारी कंसका वध किया था. रायचौधरी हमें बताते हैं कि पतंजलिके अनुसार कंसकी मृत्यु बहुत पहलेके समयमें हुई थी. अपने पाणिनी सूत्र भाष्यमें भी **पतंजलिने वासुदेव कृष्ण, बलराम एवं धनपति कुबेरको समर्पित मंदिरों एवं प्रासादोंका उल्लेख किया है (महाभाष्य 2.2.34).**

पांचवीं शताब्दी ईसापूर्वमें, सबसे महान संस्कृत व्याकरणकर्ता, पाणिनीने उल्लेख किया है कि वैष्णववाद “पांचवीं शताब्दी ईसा पूर्वमें भी भक्तिका धर्म था” ऐसा रायचौधरी लिखते हैं.

चौथी शताब्दी ईसा पूर्वसे कौटिल्यका अर्थ-शास्त्र भी कई बार कृष्णको संदर्भित करता है, यथा कृष्ण जन्मके आख्यान एवं वृष्णियों के वंशका नाश आदि, साथही उसी शताब्दीके बौधायन धर्म-सूत्रमें कृष्णके लिए बारह अलग-अलग नाम दिए गए हैं, जिनमें केशव, गोविंद और दामोदर जैसे लोकप्रिय नाम शामिल हैं.

चूंकि कृष्णका उल्लेख पूर्व-बौद्धकालीन ग्रंथोंमें भी किया गया है, इसलिए हमें यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि कृष्ण गौतमबुद्धसे (आधुनिक इतिहासकार जिनका समय लगभग 563- 483 ईसा पूर्व मानते हैं) पहले ही थे.

“Atthi Jambāvatī nāma mātā sībbīssa râjinô, Sā bhariā Vā

महाउम्मग्गजातकमें वासुदेव कृष्णका वर्णन

साथ ही बौद्ध धर्म ग्रंथ महाउम्मग्गजातकके, जिसे आधुनिक इतिहासकारों द्वारा चौथी शताब्दी ईसा पूर्वका माना गया है, अनुसार जांबवती वासुदेव कान्हाकी पटरानियोंमेंसे एक थीं, जो कि श्रीमद्भागवत पुराणमें दिए गए वर्णनके साथ मेल खाता है. अर्थात चौथी शताब्दी ईसापूर्वके बौद्ध धर्मावलंबी कृष्णसे परिचित ही थे.

जैन धर्म ग्रंथ कृष्णके जीवनको और भी पीछे धकेलते हैं. रायचौधरी लिखते हैं, "जैन परंपरा कृष्णको अरिष्टनेमीका समकालीन बनाती है... जो पार्श्वनाथके तत्काल पूर्ववर्ती हैं.... पार्श्वनाथ लगभग 817 ईसा पूर्व हुए, कृष्ण नौवीं शताब्दी ईसा पूर्वके समापन वर्षोंसे बहुत पहले जीवित रहे होंगे.'' इसी प्रकार जैन-ग्रंथ 'नायाधम्मकहा' तथा 'रायपसेनियसुत्त' में मुकुंदमहा नामसे भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण एवं बलरामके प्रति मनाए जाते उत्सवका वर्णन प्राप्त होता है.

साथ ही श्रीमद्भागवतम और महाभारत स्वयं कृष्णके जीवनको लगभग 3000 ईसा पूर्वमें रखते हैं. यही तथ्य चालुक्य राजवंशके सबसे महान सम्राट पुलकेशिन द्वितीयके 5वीं शताब्दी (634-635ई.)के ऐहोल अभिलेखमें बताया गया है कि महाभारत युद्धको हुए 3735 वर्ष बीत गए हैं, इस दृष्टिसे महाभारतका युद्ध 3101ईसा पूर्वके पहले लड़ा गया होगा. इस तिथिको लेकर पुरातत्ववेत्ता के.वी. रमेश कहते हैं:- "पुरातत्वविदों और इतिहासकारों को इस कालानुक्रमिक गणनाको केवल अंधेरेमें तीर मारनेके रूपमें मानने और संक्षेपमें अमान्य घोषित करनेसे बहुत सावधान रहना चाहिए क्योंकि उत्तर और दक्षिण के दर्जनों शिलालेख सदियोंसे इस तिथिकी बार-बार पुष्टि करते आ रहे हैं, जो इस प्रकार यह सिद्ध करते हैं कि यह तिथि एक स्थायी और विश्वसनीय स्मृति पर आधारित है. (रमेश 2004:301)

- वासुदेव कृष्ण एंड मथुरा,मीनाक्षी जैन, पृष्ठ ४९

अब तककी सबसे महत्वपूर्ण खोज 1877 ई.में अंग्रेजी जनरल सर अलेक्जेंडर कनिंघम द्वाराकी गई थी. मध्य भारतमें बेसनगरके एक पुरातत्व सर्वेक्षणके दौरान, उन्होंने एक सजावटी स्तंभका उल्लेख किया. (चित्र-34) स्तंभके आकारने कनिंघमको इसे गुप्त राजवंश (ईस्वी सन् 300-550)की अवधिका माननेके लिए प्रेरित

किया.

कनिंघमके बत्तीस साल बाद, हालांकि, एक मिस्टर लेकने महसूस किया कि उसने स्तंभके निचले हिस्से पर एक ऐसे क्षेत्रमें कुछ अक्षरोंको देखा है जहां तीर्थयात्रियोंने इसे सीसा, सिंदूरके रंगसे रंगा था. जब गाढ़ा, लाल रंग हटाया गया, तो लेकका अनुमान सही साबित हुआ. इस जांचमें मिस्टर लेकके साथ आए डॉ. जे. एच. मार्शल, खोजके महत्व पर रोमांचित थे. 1909में जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटीमें उन्होंने अपने निष्कर्षोंका वर्णन किया.

"कनिंघमने कॉलमको बहुत बादके कालका दिनांकित किया था और वह उस रिकॉर्डके मूल्यके बारेमें बहुत कम सोच पाया था जिसे वह खोजनेसे चूक गया था.... उजागर किए गए कुछ पत्रों पर एक नज़र केवल यह दिखानेके लिए आवश्यक थी कि स्तंभ गुप्त युगसे कई शताब्दी पहले था. यह, वास्तवमें मेरे लिए एक आश्चर्यकी बात थी, लेकिन जब शिलालेखकी शुरुआती पंक्तियोंको पढ़ा जाने लगा तो इससे भी बड़ा आश्चर्य हुआ."

इस प्राचीन ब्राह्मी शिलालेखका निम्नलिखित लिप्यंतरण और अनुवाद जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (लंदन: JRSS, pub. 1909, pp. 1053-54) में प्रकाशित हुआ था.

1) देवदेवसवा [सूदे] वासागरुड़ध्वजोअयम 2) करितो [ए] हेलियोडोरेनाभग- 3) वतेनादियसा-पुत्रेनातखसीलाकेना 4) योनादतेनाअगतेना महाराजा 5) अंतलिकितस उप [म्] तासंकसम-रानो 6) काशीपुत् [र] सा [भ] गभद्रसत्रातरस 7) वसेना [चतु] दसेनाराजेनावधमनासा

"देवताओंके देवता वासुदेव (विष्णु)का यह गरुड़-स्तंभ, हेलियोडोरस द्वारा बनाया गया था, जो डायोनके पुत्र विष्णुके उपासक और तक्षशिलाके एक निवासी थे, जो महान राजा अंतालकिदाससे राजाके पास ग्रीक राजदूतके रूपमें आए थे. काशी पुत्र भगभद्र, उद्धार कर्ता, फिर अपने राज्यके चौदहवें वर्षमें समृद्ध रूपसे राज्य करते रहें."

स्तंभ 113 ईसा पूर्वमें भारतमें यूनानी राजदूत हेलियोडोरस द्वारा बनाया गया था. वह, मेगस्थनीज़की तरह, उत्तर-पश्चिम भारतके बैक्ट्रियन, अर्थात गांधारक्षेत्रमें तक्षशिलासे आया था, जिसे ईसा पूर्व 325में सिकंदर महानने जीत लिया था. हेलियोडोरसके समय तक तक्षशिलाके अंतर्गत वर्तमान अफगानिस्तान, पाकिस्तान और पंजाबका क्षेत्र आता था. तक्षशिलाके राजा अंतालकिदासने हेलियोडोरसको राजा भगभद्रके दरबारमें भेजा था, लेकिन जहां मेगस्थनीज़ने केवल कृष्ण और वैष्णववादके बारेमें मात्र लिखा ही था, वहीं हेलियोडोरसने उन्हें इतना आकर्षक पाया था कि उसने अपनी आध्यात्मिक उन्नतिके लिए वैष्णव अथवा भागवत धर्म को अपना लिया! हेलियोडोरसके स्तंभने वासुदेव, या कृष्णको "देवताओंके देवता"के रूपमें मान्यता दी. इस शिलालेखसे यह स्पष्ट है कि हेलियोडोरस एक वैष्णव था, जो विष्णुका भक्त था.

हेलियोडोरसने अपने स्तंभके शिलालेख पर यह भी लिखा था कि "तीन अमर उपदेशोंका अभ्यास करने पर स्वर्गकी प्राप्ति होती है- आत्म-संयम, दान और कर्तव्यनिष्ठा." ये तीन गुण महाभारतमें ठीक उसी क्रममें प्रकट होते हैं, जिससे कलकत्ता विश्वविद्यालयके प्रोफेसर कुंजगोविंद स्वामीने निष्कर्ष निकाला कि हेलियोडोरस "भागवत [वैष्णव] धर्मसे संबंधित ग्रंथोंसे अच्छी तरह परिचित थे." रायचौधरीने भी इस पर सहमति व्यक्तकी है, कि "महाभारतकी शिक्षा और बेसनगर शिलालेखके बीच कुछ घनिष्ठ संबंध था," यह साबित करता है कि हेलियोडोरस वैष्णववादका एक जानकार भक्त था. हेलियोडोरस कॉलमने इस मिथकको भी खारिज कर दिया कि वैदिक-धर्मने गैर-भारतीयोंके धर्मांतरणको कभी भी स्वीकार नहीं किया. जबकि यह बहिष्कारकी प्रवृत्ति भारतमें (हालांकि वैष्णववादमें बहुत कम रही) जिस रूपमें दिखती है, उस पर इस्लामी इतिहासकार अबूरेहान अलबरूनीका कहना है कि भारतमें मुस्लिम आक्रमणके कुछ समय बाद तक इसका अभ्यास नहीं किया गया था, जो ईस्वी सन् 674के आसपास शुरू हुआ था. अलबरूनी 1017 ईस्वीमें अध्ययन करनेके लिए भारत आया और अपनी पुस्तकमें अपने निष्कर्षोंको प्रकाशित किया. उसने निष्कर्ष निकाला कि हिंसक संघर्षों और भारतीयोंके मुसलमानोंमें जबरन धर्मांतरणने भारतीयोंको, धार्मिक सिद्धांतोंकी तुलनामें आत्मरक्षाके लिए एक बहिष्करण नीति अपनानेके

लिए मजबूर किया. उसने पाया कि मुस्लिम आक्रमणोंसे पहले कई शताब्दियों तक, धर्मांतरण पर कोई रोक नहीं थी, और हेलियोडोरस कॉलम निश्चित रूपसे इस तथ्यकी पुष्टि करता है.

वर्तमान में, विशेषज्ञोंके अनुसार हेलियोडोरस सबसे पहला ज्ञात पश्चिमी व्यक्ति है जिसने वास्तवमें वैष्णव धर्म अपनाया था. इसके अलावा, कई प्रतिष्ठित विद्वान, जैसे डॉ. ए. एल. बाशम और डॉ. थॉमस हॉपकिंस, स्वीकारते हैं कि हेलियोडोरस धर्म परिवर्तन करने वाला एकमात्र यूनानी नहीं था. फ्रैंकलिन और मार्शल कॉलेजमें धार्मिक अध्ययन विभागके अध्यक्ष डॉ. हॉपकिंस कहते हैं, “हेलीओडोरस संभवतः एकमात्र विदेशी नहीं था जिसे वैष्णव-भक्ति प्रथाओंमें स्वीकृत किया गया था हालांकि वह एक स्तंभ खड़ा करने वाला अकेला हो सकता था, कमसे कम एक जो अभी भी विद्यमान है. निश्चित रूपसे कई अन्य रहे होंगे.” वैदिक-धर्म तथा समाजने खुदको सार्वभौमिक सत्यके रूपमें देखा और सभी लोगोंका अपनी छत्र छायामें स्वागत किया. जैसा कि रायचौधरी लिखते हैं: बेसनगर रिकॉर्ड पूर्व- ईसाई सदियोंमें भागवत धर्ममें धर्मांतरणकी गवाही देता है और यह दर्शाता है कि वैष्णव-धर्म सुसंस्कृत यूनानियोंके दिलों पर कब्जा करनेके लिए पर्याप्त था.

इसी प्रकार “मोरा गांव”की बावड़ीसे प्राप्त शिलालेख और “घोसुंडी शिलालेख” हमें बताते हैं कि परब्रह्म भगवान्‌की जटिल और समृद्ध वैष्णव अवधारणा तथा भौतिक-जगतमें भागवत-धर्मका पूर्ण विस्तार ईसासे पूर्व लगभग दो शताब्दी पहलेसे ही अच्छी तरहसे स्थापित हो चुका था.

मथुरासे सात मील पश्चिममें मोराके छोटे और भव्य गांवमें, जनरल कनिंघमने वैष्णववादकी ऐतिहासिकताके बारेमें एक और महत्वपूर्ण खोज की. 1882 में, एक प्राचीन कुएंकी छत पर, उन्होंने शिलालेखोंसे भरे एक बड़े पत्थरके स्लैबकी खोज की. इसे प्रतिलेखित किया गया था, और शिलालेखकी एक प्रतिकृति भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षणकी वार्षिक रिपोर्टमें प्रकाशितकी गई थी.

शिलालेख इस प्रकार है:

1. **महाक्षत्रपस राजुवुलस पुत्रस स्वामि ...**

2. **भगवतां वृष्णीनां पञ्चवीराणां प्रतिमाः शैलदेवगृहे ...**

3. **यस् तोषायाः शैलं श्रीमद्गृहं अतुलं उदध समाधार ...**

4. **आर्चादिशं शैलं पञ्च ज्वलत इव परमवपुषा ...**

महाक्षत्रप राजूवुल के पुत्र स्वामी ...

भगवत वृष्णियोंके पंचवीरोंकी प्रतिमा, शैल (पाषाण) मंदिरमें ...

जिसने तोषाके इस अद्वितीय शिलागृहका निर्माण और संरक्षण किया ...

पंच मूर्तियाँ, जो परम सौंदर्यके साथ प्रदीप्त प्रतीत होती हैं

(SONYA RHIE QUINTANILLA, HISTORY OF EARLY STONE SCULPTURE AT MATHURA, p.261)

इससे यह बात प्रकाशमें आई कि ईसासे सदियों पहले न केवल कृष्णकी पूजाकी जाती थी, बल्कि उनके अन्य व्यूहों या सहयोगियों, विशेष रूपसे "वृष्णि वंशके पांच नायकों"की भी पूजाकी जाती थी, जैसा कि वायु पुराण (९७.१२)में भी उल्लेखित है. विद्वानोंके शोधसे स्पष्ट होता है कि ये पांच, कृष्ण (वासुदेव), बलराम (संकर्षण), प्रद्युम्न, सांब और अनिरुद्ध हैं.

1908 में, एक डॉ. वोगेलने मथुरा संग्रहालयमें मोरावेल स्लैबको हटा दिया था और वैदिक-धर्मको बदनाम करनेके लिए शिलालेखोंके अनुवादके साथ छेड़छाड़ करनेकी कोशिशकी थी. हालाँकि, क्योंकि शिलालेखोंकी ब्राह्मी लिपिमें लिखी सामग्री पहले ही आधिकारिक रूपसे प्रकाशित हो चुकी थी और अकादमिक हलकोंमें अच्छी तरहसे जानी जाती थी, डॉ. वोगेलके दुष्प्रचार पैदा करनेके प्रयास विफल रहे.

सनातन-धर्म और वैष्णवमत का जटिल धर्मशास्त्र, तत्वमीमांसा और ब्रह्मांड विज्ञान निश्चित रूपसे ईसासे सदियों पहले एक उन्नत अवस्थामें मौजूद था. मोरा शिलालेख इस ऐतिहासिक तथ्यका एक महत्वपूर्ण पुरातात्विक प्रमाण है.

इसी प्रकार राजस्थानके चित्तौड़ जिलेके घोसुंडी गाँवमें घोसुंडी शिलालेख

मिलता है, (चित्र-35) जो मोटे तौर पर मोरावेल शिलालेखके संदेशकी नकल करता है. कविराज श्यामलदासने सबसे पहले इस सबूतको द जर्नल ऑफ द बंगाल एशियाटिक सोसाइटीमें प्रकाशमें लाया. आज इस शिलालेखका निरीक्षण उदयपुरके विक्टोरियाहॉल संग्रहालयमें किया जा सकता है. शिलालेख उत्तरी ब्राह्मी-लिपि नामक संस्कृत-लिपिके रूपमें है, जो शिलालेखको दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व अथवा उत्तरमौर्य या प्रारंभिक शुंग काल (200-300 ईसा पूर्व)का होनेके रूपमें बताता है. यह भागवत-संप्रदायसे संबंधित सर्वाधिक प्राचीन अभिलेखोंमें से एक है. इस अभिलेखसे ज्ञात होता है कि उस समय तक उत्तर भारतमें भागवत-धर्म लोकप्रिय हो चुका था. इस शिलालेखमें भागवत पूजाके निमित्त शिला प्राकार बनाए जानेका वर्णन है.

चित्र: घोसुंडी शिलालेख

1 (Karito=yam rajna Bhagava)tena Gajayanena Parasariputrena Sa-

2 (-rvatatena Asvamedha-ya)jina bhagava[d]bhyam Samkarshana-Vasudevabhyam*

3 (anihatabhyam sarvesvara)bhyam pujasila-prakaro Narayana-vatika.

(This) enclosing wall round the stone (object) of worship, called Narayana-vatika (Compound) for the divinities Samkarshana-Vāsudeva who are unconquered and are lords of all (has been caused to be made) by (the king) Sarvatata, a Gajayana and son of (a lady) of the Parasaragotra, who is a devotee of Bhagavat (Vishnu or Samkarshana/Vāsudeva) and has performed an Asvamedha sacrifice.

– Ghosundi Hathibada Inscriptions, 1st-century BCE

(Epigraphia Indica Vol. XXII, Archaeological Survey of India, pages 198-205)

घोसुण्डी शिलालेखमें संकर्षण और वासुदेवके पूजागृहके चारों ओर पत्थरकी चारदीवारी बनाने और गजवंशके सर्वतात द्वारा अश्वमेघ यज्ञ करने एवं भागवत धर्मके अनुयाई होनेका स्पष्ट उल्लेख है.

एक लगभग समान शिलालेख भी प्रमाण स्वरूप प्राप्त होता है और इसे हाथी-वाड़ा (चित्र-36) शिलालेख कहा जाता है. ये शिलालेख इस मिथकको भी दूर करते हैं कि कृष्ण केवल क्षत्रिय, या प्रशासनिक-योद्धा, भारतके एकवर्ग द्वारा पूजनीय थे, जिस वर्गमें कृष्ण प्रकट हुए थे. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षणके के.पी जायसवालके अनुसार, इन शिलालेखोंसे पता चलता है कि ब्राह्मण, पुरोहित और बौद्धिक वर्गने भी कृष्णकी "सभीके भगवान्"के रूपमें पूजा की, और इस तरह वैष्णववाद पूरे भारतीय समाजमें व्याप्त हो गया. चित्तौड़के निकट नगरी नामक स्थानसे प्राप्त इस शिलालेखसे भगवान् वासुदेव और संकर्षणकी पूजा हेतु निर्मित एक महास्थानके बारेमें पता चलता है जिसे प्राचीन समयमें नारायणवाटिकाके नामसे जाना जाता था. चित्तौड़ आक्रमणके समय अकबर द्वारा इस नारायण वाटिकाका उपयोग अपनी सेनाके हाथियोंको रखनेके लिए हुआ था जिस कारण इसका नाम हाथीबाड़ा पड़ गया.

महाराष्ट्रके आधुनिक राज्यमें प्रसिद्ध नानाघाट गुफा शिलालेखमें (चित्र-37) एक और बातका खुलासा होता है, जहां वासुदेव और संकर्षण (या कृष्ण और बलराम) को एक ब्राह्मणके आह्वानमें शामिल किया गया है.

नमो संकंशन-वासुदेवानं चन्दसुतानं महिमावतानं

"चंद्रवंशीयोंके दो वंशजों, संकर्षण और वासुदेवको, जो महिमासे पूर्ण हैं, प्रणाम है।"

शिलालेखोंका श्रेय सातवाहन वंशकी एक रानीको दिया जाता है. उसका नाम या तो नयनिका या नागनिका था, जो संभवतः राजा सातकर्णीकी पत्नी थी. विवरणसे पता चलता है कि वह संभवतः रानी मां थीं, जिन्होंने अपने पतिकी मृत्युके बाद इस गुफाको प्रायोजित किया था, क्योंकि शिलालेख उनके जीवन और उनके बेटेके नए राजा होनेके बारेमें विस्तृत विवरण देता है.

इसके अतिरिक्त, रायचौधरीकी रिपोर्टके अनुसार नानाघाट शिलालेख आगे बताता है कि भागवत [वैष्णव] धर्म अब उत्तरी भारत तक ही सीमित नहीं था, बल्कि दक्षिणमें फैल गया था और महाराष्ट्रके समृद्ध संभ्रांत वर्गके लोगोंके मन मस्तिष्क पर एकाधिकार स्थापित कर चुका था. महाराष्ट्रसे इसका तमिल देशमें प्रसार और फिर भारतीय धार्मिक जगतके सुदूर कोनोंमें नए उत्साहके साथ प्रवाहित होना तय था. पुरालेखके आधार पर, यह शिलालेख निर्णायक रूपसे पहली शताब्दी ईसा पूर्व (100 BC)के उत्तरार्धका कहा जा सकता है.

इसी प्रकार कृष्ण-जन्म-भूमिसे प्राप्त महाक्षत्रपशोडाषका शिलालेख (चित्र-38)भी अत्यंत महत्वपूर्ण है.

आर. पी. चंद ने इस शिलालेखका विवरण इस प्रकारसे दिया:

6. वसुना भगव(तो वासुदे)

7. वस्य महास्थान ... (चतु:षा)

8. लाम तोरणं वे(दिकाः प्रति)

9. स्थापितो प्रीतो भ(वतु वासु)

10. देवः स्वामीस्य [महाक्षत्र]

11. पस्य सोडश [स्य] ...

12. सम्वर्तेयताम्।

... वसु द्वारा चार भवनों (चतुषालं) से घिरी एक चौकोर इमारत, एक स्तंभित द्वार (तोरणं) और आंगनके मध्यमें एक वर्गाकार वेदिका का निर्माण किया गया है, जो भगवान् वासुदेवके महान स्थल (महास्थान)में स्थित है. वासुदेव कृपाशील हों. प्रभु महाक्षत्रप सोडश का प्रभुत्व स्थिर रहे. (चंदा 1920: 171)

शिलालेखका ऊपरी भाग क्षत-विक्षत है और पाँच पंक्तियोंको ठीकसे नहीं बनाया जा सकता है. शेष भागको बेहतर ढंगसे संरक्षित किया गया है और इसका अनुवाद इस प्रकार किया जा सकता है: “भगवान् वासुदेवके महान मंदिर में,

कौशिकीपक्षकाके पुत्र वसु द्वारा एक प्रवेश द्वार और एक रेलिंग बनाई गई थी. भगवान् वासुदेव प्रसन्न हों और स्वामी महाक्षत्रपसौदासके (कल्याण)को बढ़ावा दें".

मथुरामें आजके कृष्ण-जन्मभूमि मंदिरके पवित्र स्थल पर कृष्णके मंदिरके निर्माणकी परंपराको साबित करता यह सबसे पुराना (100B.C.) पुरातात्विक साक्ष्य है. महाक्षत्रपसौदासके नाम उल्लेख सहित कई अन्य शिलालेख भी मथुरा मंडलसे प्राप्त हुए हैं जो कि सौदासको भगवान् वासुदेवका भक्त बताते हैं.

उपरोक्तप्रमाणों एवं शिलालेखोंके अतिरिक्त दो शैल चित्र क्रमशः मध्यप्रदेश एवं कश्मीर में प्राप्त हुए हैं जो कि भारतमें वैष्णव-उपासनाको और भी प्राचीन सिद्ध करते हैं .

कश्मीरमें वर्तमान अफगानिस्तानकी सीमाके निकट चिलास नामक स्थानसे प्राप्त शैलचित्रमें कृष्ण एवं बलराम का चित्रण किया गया है. (चित्र-39) कृष्णका अंकन चक्र सहित एवं बलरामके चित्रमें हल एवं गदा स्पष्ट रूपसे दिखाई देते हैं. शैलचित्रके साथ ही खरोष्ठी लिपिमें लिखा शिलालेख भी मिलता है जिसमें दोनों चित्रत वीरोंके नाम राम-कृष्णके रूपमें अंकित हैं. चित्रोंके साथ ही कई बौद्ध आकृतियां भी प्राप्त हुई है, जिसके कारण यह शैलचित्र लगभग एक सौ ईसा पूर्व तक के माने गए हैं.

वर्तमान मध्यप्रदेशके टिकला नामक स्थानसे भी कृष्ण बलराम एवं सुभद्रा (एकानंशा)के शैलचित्र प्राप्त हुए हैं (चित्र-40) जिनके साथ ब्राह्मी-लिपिमें लिखा अभिलेख इन चित्रोंके मौर्यकालीन होनेको इंगित करता है. इनमें भी बलरामको हल एवं कृष्णको चक्रके साथ दर्शाया गया है.

इनके अतिरिक्त एक अन्य शिलालेख भी हाल हीमें गुजरातके प्रसिद्ध द्वारकाधीश मंदिरके द्वितीय तलसे ब्राह्मी-लिपिमें लिखा हुआ प्राप्त हुआ है, जो कि पुरातत्ववेत्ताओं द्वारा 400 ईसा पूर्वके लगभगका निर्धारित किया गया है (चित्र-42). यह इस बातकी पुष्टि करता है कि भारतमें श्रीकृष्णकी मूर्तिपूजा अत्यंत प्राचीन कालसे अनवरत चली आ रही है. साथ ही भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा समुद्रमें डूबी हुई द्वारिका नगरीके अवशेषोंकी खोज भारतीय पुराणों एवं महाभारत की कथाओंकी

सत्यता सिद्ध ही करती है. इसी संबंधमें गुजरातके वल्लभीके मैत्रक राजवंशके मंत्री सिंहादित्य द्वारा प्रदत, पालीताणासे प्राप्त ताम्रपत्र भी एक महत्वपूर्ण प्रमाणके रूपमें दृष्टिगोचर होते हैं. (चित्र-41) सिम्हादित्य द्वारिकाके राजा वराहदासके पुत्र थे एवं मैत्रक राजवंशके मंत्रीके रूपमें नियुक्त थे. इनका उक्त ताम्रपत्र कृष्ण एवं द्वारिका का वर्णन करता है जिसे 574 A.D. अर्थात पंद्रह सौ वर्ष प्राचीन माना गया है. यह इस बातको सिद्ध करता है कि हाल ही में खोजे गए समुद्रमें डूबे हुए अवशेष भागवत महाभारत एवं अन्य पुराणोंमें वर्णित द्वारिका नगरीके ही है.

अनेक मुद्रा शास्त्रीय साक्ष्य भी कृष्णकी प्राचीनताकी पुष्टि करते हैं उदाहरणके लिए, अफगानिस्तान और पूर्व सोवियत-संघकी सीमा पर, पी. बर्नार्ड और एक फ्रांसीसी पुरातत्व अभियान द्वारा किए गए, ऐ-खानममें खुदाईसे भारत-यूनानी शासक अगाथोकल्स (180-165 ईसा पूर्व) द्वारा जारी किए गए छह आयताकार कांस्य सिक्कोंका पता चला. सिक्कोंमें ग्रीक और ब्राह्मी दोनों लिपि लिखी गई थी और सबसे दिलचस्प बात यह है कि ये विष्णु या वासुदेवकी एक छवि दिखाते हैं, जिसमें एक चक्र और एक नाशपातीके आकारका या शंख दृष्टि गोचर है, जो वैष्णव-धर्ममें भगवान् के चार मुख्य पवित्र प्रतीकोंमेंसे हैं. (चित्र-44-45)

प्राचीन सिक्कोंकी कई अन्य खोज़ें भी भारतमें कृष्ण पूजाकी पुरातनता और इस प्रकार कृष्ण-बलरामको पूजनेवाले भागवत संप्रदायकी पुरातन भक्तिमार्गीय परंपराको साबित करती हैं. इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण वृष्णिवंशी राजाओंके सिक्कोंकी खोज है. महाभारत एवं भागवतके अनुसार वृष्णिकुलमें ही कृष्ण एवं बलरामका जन्म हुआ था अतः वृष्णिकुलका कोई भी ऐतिहासिक प्रमाण अंततः कृष्ण एवं बलराम की ऐतिहासिकताका ही प्रमाण सिद्ध होता है. (चित्र-43)

बलरामकी पूजाके साक्ष्य भी मौर्य पूर्व कालसे ही प्राप्त होना प्रारंभ हो जाते हैं. श्रीमद्भागवत पुराणके अनुसार कृष्णके बड़े भाई बलरामको वारुणीपेय अति प्रिय था. इसका चित्रण मूर्ति-कलामें भी यथावत प्राप्त होता है जिसमें एक हस्तमें बलराम वारुणीका पात्र धारण किए दिखते हैं. वहीं दूसरा हस्त अभय वरद मुद्रामें दिखता है.

सभी प्राप्त प्रतिमाओंमें प्रायः बलरामके पृष्ठ भागमें शेषनागका भी दर्शन होता है जो कि श्रीमद्भागवत पुराणके अनुसार बलरामके शेष अवतार होनेको सिद्ध करता है. नागसे संबंध होनेके कारण भारतके मध्यदेश अर्थात मथुरा मंडल एवं संबंधित क्षेत्रके खेती हर समाजमें बलरामकी एवं अन्य नागोंकी पूजाका अत्यधिक प्रचलन व्याप्त था.

प्रचलित अनुश्रुतिके अनुसार दाऊजीकी एक विशाल प्रतिमा वज्रनाभ द्वारा 5000वर्ष पूर्व स्थापितकी गई थी. (चित्र-51) मूर्ति-कलाकी शैली, मुकुट, पृष्ठपर शेषनाग, वरुणी पेयका पात्र तथा अन्य बारीकियोंको देखने पर यह प्रतिमा शुंगकालीन तो कही ही जा सकती है. संभव है वज्रनाभ द्वारा स्थापित प्रतिमाके क्षरित होने पर शुंगकुषाण कालमें पुनः प्रतिष्ठाकी गई हो. अथवा वज्रनाभ द्वारा स्थापित प्रतिमाकी नकल करके शुंग-कुषाण कालमें व्यापक स्तर पर प्रतिमाओंका निर्माण किया गया हो. इस प्रकार गुप्त कालके आते आते मूर्तिकलामें परिष्कार होता हुआ भी दृष्टिगोचर होता है. (चित्र-47,48,49,50)

उपरोक्त सभी साक्ष्य कृष्णकी ऐतिहासिकताको तो सिद्ध करते ही हैं साथ ही भारतीय संस्कृतिके प्राचीन कालसे अथवा कमसे कम पिछले 5000 वर्षोंसे अनवरत चलते आते रहनेको सिद्ध करते हैं. साथ ही इस बातको भी सिद्ध करते हैं कि भारतमें मूर्ति-पूजाका प्रारंभ गुप्त कालमें नहीं किंतु उससे कई सौ वर्ष पहले या यूं कहें वैदिक-कालसे ही प्रारंभ हो चुका था. इसी प्रकार कृष्णकी भी कई प्रतिमाएं मौर्य-कालसे प्राप्त होना प्रारंभ हो जाती हैं तथा गोवर्धनधारी कृष्णकी प्रतिमाएं कुषाण-कालसे मिलना प्रारंभ होती हैं. कृष्ण-लीलासे जुड़े अन्य प्रसिद्ध स्थानकोंको भी कलाकारोंने अपने मूर्तिशिल्पका प्रमुख विषय बनाया है जिसमे यमलार्जुन- भंग, केशी- वध, शकट-भंग पूतनावध, नवनीत - हरण गोवर्धनधारी कृष्ण आदि विशेष रूपसे उल्लेखनीय है।

कृष्णके चतुर्भुज स्वरूपकी प्राप्ति प्राचीन-कालसे ही भागवत पंचरात्रिक-संप्रदायकी स्थितिको सिद्ध करती है. (चित्र-52) कुषाण-काल आते-आते भागवत-संप्रदाय विशेष लोकप्रिय हो चुका था जो कि कुषाण-कालमें मिलती कई सारी कृष्ण प्रतिमाओंको देखते हुए कहा जा सकता है. (चित्र-53,54)कृष्णके चतुर्भुज स्वरूप

तथा वेणुधारी स्वरूप इस बातको सिद्ध करते हैं कि कुषाण-काल तक भागवत पुराण अनुसार तथा पंचरत्रिक विधिके अनुसार कृष्णकी पूजाका प्रचलन लोकप्रिय हो चुका था जिसका केंद्र शूरसेन देशकी राजधानी मथुरा नगर था.

इन सभी स्वरूपोंमें कृष्णका गोवर्धनधारीरूप विशेष लोकप्रिय हुआ. कृष्णके इस रूपका अंकन कुषाणकाल तथा संभवत: कुषाण पूर्व-कालसे ही प्रारम्भ हो गया था जिसकी उदाहरण स्वरूप एक प्रति भारतकला भवन बनारसमें संग्रहीत मिलती है. (चित्र-57) कृष्णके गोवर्धनधारी रूपकी कथा अति विस्तारसे **श्रीमद् भागवत पुराण, विष्णुपुराण और हरिवंशपुराण**में प्राप्त होती है. पांचवीं शती.ई.के लगभग मंदौरके एक द्वारफलक पर कृष्णके गोवर्धनधारी रूपका अत्यन्त सुन्दर अंकन प्राप्त होता है.

लगभग इसी समयका गोवर्धन-धारण किये हुए कृष्णका मूर्तिशिल्प भारतकला भवन बनारस (चित्र-57)एव इलाहाबाद संग्रहालयसे भी प्राप्त हुआ है. (चित्र-58) इलाहाबाद सग्रहालय (कड़ासे प्राप्त)से प्राप्त इस मूर्तिशिल्पका शिरोभाग टूटा है. बायें हाथसे कृष्ण गोवर्धन-पर्वत उठाये है और दाहिना हाथ कोहनीसे टूटा है. इसमें कृष्णके दाहिनेकी ओर शेर बैठा हुआ है और बायें तरफ पशुओका झुंड है. इसमें कृष्णके केशको काकपक्षीय ढंगसे उकेरा गया है. ग्रीवामें हार सुशोभित दिखाया गया है तथा नीचेके भागमें वर्तमान वल्लभ-संप्रदायमें ठाकुरजीको धरे जानेवाले अंग वस्त्र तनियाके समान छोटा परिधान पहने हुए दिखलाया गया है तथा कटी पर फेंटेके समान वस्त्र भी दिखाई देता है. यह सुंदर पूजित प्रतिमा इस्लामी आक्रांताओं द्वारा खंडित कर दी गई थी.

मथुरासे भी लगभग इसी समयकी एक प्रतिमा प्राप्त हुई है, जिसमें कृष्णको गोवर्धन-धारण किये हुए प्रदर्शित किया गया है. यह प्रतिमा गतश्रम नारायण टीलेसे प्राप्तकी गई थी. (चित्र-61)

रंगमहल (राजस्थान) से गुप्तकालीन एक प्रसिद्ध कृष्ण गोवर्धनधारी मृण्फलक प्राप्त हुआ है जो वर्तमान मे बीकानेर संग्रहालय मे सुरक्षित है. (चित्र-56) कल्पना एस. देसाईके अनुसार गोयेत्ज महोदयने इसको 'द आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर

ऑफ बीकानेर स्टेटमें प्रकाशित किया था. इसमे कृष्णको अपने बाये हाथकी हथेली पर पर्वत उठाये तथा दाहिने हाथको श्रीनाथजीकी भांति कटि अवलम्बित किये हुए दिखाया है. इसके साथ ही उनके सामने गायोका एक समूह भी अंकित किया गया है जिनकी वे रक्षा कर रहे हैं.

इनके अतिरिक्त अन्य कई प्रतिमाएं भी प्राप्त होती हैं यथा कुषाण कालीन फलक जिसमें नख पर गोवर्धन धारणका प्राचीनत अंकन प्राप्त होता है (चित्र 53), जतीपुरासे प्राप्त उत्तर कुषाण कालीन गोवर्धनधारी कृष्ण (चित्र 55), ग्वालियरसे प्राप्त गुप्त कालीन गोवर्धनधारी कृष्ण (चित्र 59), एक अन्य उत्तर गुप्त कालीन गोवर्धनधारी कृष्ण जिन्हें आक्रांताओंसे बचाने हेतु यमुनामें छुपा दिया गया था (चित्र 60), बादामीमें प्राप्त छठी शताब्दी ईस्वीका गोवर्धनधारी कृष्णका अंकन तथा इससे लगभग एक शताब्दी पूर्व (500ईस्वी)का गोवर्धनधारी कृष्णका कंबोडियासे प्राप्त स्वरूप जो कि गोवर्धनधारी कृष्णकी पूजाको और भी प्राचीन सिद्ध करता है (चित्र 62). गुप्त कालीन विष्णु प्रतिमाओंकी बहुलताको देख कर यह कहा जाता है कि इस कालमें निश्चय ही संपूर्ण भारतमें भागवत संप्रदायका प्रबल प्रभाव रहा होगा (दृष्टव्य चित्र 65).

उपरोक्त प्रतिमाओंको देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि कृष्णके गोवर्धनधारी स्वरूपकी पूजा प्राचीनकाल अथवा कम-से-कम कुषाणकालसे प्रारंभ हो चुकी थी. इन सभी प्रतिमाओंमें गोवर्धनधारी कृष्णके स्वरूपमें समयके साथ-साथ परिष्कार होता देखा जा सकता है. **यथा प्रारंभिक प्रतिमाओंमें आभरण आदिका सर्वथा अभाव था, जो समयके साथ-साथ कई अलंकार आभरण आदिके साथ कई बारीकियोंसे युक्त होती गयीं. कटी-प्रदेशका झुकाव बढ़ता एवं हाव-भावमें परिवर्तन भी देखा जा सकता है. (चित्र-63,64,66,67,68)**

वर्तमान समयमें श्रीनाथद्वारामें विराजित महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्यजी द्वारा प्रकटित श्रीनाथजीका प्राचीन स्वरूप लालिमायुक्त श्यामवर्णका है. इस प्रकारका लालिमायुक्त श्यामवर्ण गिरिराज गोवर्धनकी शिलाओंमें भी दृष्टव्य है. श्रीविग्रह आयताकार पीठिका सहित है, जो गिरिराज गोवर्धनको दर्शाती है तथा इसके मध्यमें

स्थित अर्धमंडलाकार कंदरामें श्रीनाथजीका स्वरूप स्थित है. पीठिकाके ऊपरी मध्य भागमें एक शुकका दर्शन होता है जिसे सांप्रदायिक ग्रंथोके अनुसार शुकदेवजीका प्रतीक माना जाता है.

शुकके बाईं ओर दो मुनिकुमार (नर नारायण कहे जाते) तथा दाईं ओर एक मुनिकुमार(कपिल मुनि कहे जाते) हैं. कतिपय स्थानों पर इन तीन मुनियोंको संकर्षण, एवं अनिरुद्ध-प्रद्युम्न भी कहा गया है जिनके साथ श्रीनाथजी अर्थात वासुदेव , वैष्णव चतुर्व्यूहको दर्शाते हैं.

श्रीनाथजीके दक्षिण चरणके पास पीठिकामें एक गाय तथा बैलका दर्शन होता है जो कि सांप्रदायिक मान्यता अनुसार पृथ्वी तथा धर्मको इंगित करता है साथ ही गोवर्धन धारणके समय गोवंशकी रक्षा करनेको तथा श्रीप्रभुके अनुग्रह अर्थात पोषण लीलाका भी प्रतीक है .

इसी प्रकार श्रीनाथजीके दक्षिण चरणके समीप पीठिकामें मोरके जोड़ेका भी दर्शन होता है. सांप्रदायिक मान्यता अनुसार मोरका जोड़ा निरुपाधिक-निःस्वार्थ प्रेमका प्रतीक है. इस प्रकार यह श्रीप्रभुके प्रति भक्तोंके निःस्वार्थ प्रेमका(ईशानुकथा) प्रतीक है.

श्रीनाथजीके दक्षिण स्कंधकी ओर पीठिकामें एक मेषका अंकन है जो कि उत्पत्तिका प्रतीक कहा जाता है तथा वाम स्कंधकी ओर नाग/मीनका अंकन है जो संहारका प्रतीक है. मेष तथा मीनके यह अंकन श्रीनाथजीके स्वयं ही कालचक्र-नियंता होनेको इंगित करते हैं.

इसी प्रकार दक्षिण जंघाके समीप अंकित नाग भक्ताग्रगण्य कालरूपी शेषनागका प्रतीक है तथा वाम जंघाकी ओर अंकित नृसिंह भक्तोंके पालक तथा रक्षक होनेका प्रतीक हैं.

श्रीनाथजीका ललाट ऊंचा है तथा जूड़े की ओर केशोंका भी दर्शन होता है. श्रीनाथजीके नेत्र विशाल तथा सम्मुख और किचिंत नीचेकी ओर दृष्टि रखे हुए हैं. श्रीजीकी नासिका तीक्ष्ण तथा ओष्ठ भारयुक्त एवं कपोल फलक तक जाती दीर्घ हास्य

मुद्रामें है. निचले ओष्ठके लगभग एक अंगुल नीचे चिबुकके दर्शन होते हैं. श्रीनाथजीके कर्ण और नासिका भी छिद्र युक्त बताए जाते हैं. श्रीकंठमें एक पतली सी माला ‘कंठसिरी’ धारण किए हुए हैं तथा कटि पर श्रीनाथजीने ‘तनिया’ (छोटा वस्त्र) धारण कर रखा है. जानुओंसे नीचे तक लटकने वाली ‘वनमाला’ भी श्रीनाथजीने धारण कर रखी है व श्रीहस्तमें कड़े भी दृष्टव्य हैं. श्रीनाथजीका यह स्वरूप किशोरावस्थाका है जिसमें दोनों चरणों पर समान रूपसे अवलंबन दृष्टिगोचर होता है.

साथ ही यह भी देखा जा सकता है कि अन्य सभी प्राचीन स्वरूपोंमें गोवर्धनधारणकी मुद्रा ललित-त्रिभंगी न होकर श्रीनाथजीकी भांति दोनों चरणों पर खड़े हुए है एवं नख पर नहीं वरन सम्पूर्ण श्रीहस्त पर गोवर्धन धारण दृष्टिगोचर होता है. सांप्रदायिक मान्यता अनुसार गोवर्धनगिरिकी कंदराके द्वार पर खड़े श्रीनाथजी अपने निज स्वकीय भक्तोंको ऊर्ध्व भुजा उठाकर पुनः अपनी ओर बुला रहे हैं.

उपरोक्त सभी प्रतिमाओंमें श्रीनाथजीका मूल-स्वरूप (आभरण अलंकारोंका अभाव एवं कटिप्रदेशके न्यूनतम झुकावके कारण) सबसे साधारण सिद्ध होता है अर्थात् सर्वाधिक प्राचीन सिद्ध होता है. प्राचीनताकी अधिकताके कारण कुछ पाश्चात्य विद्वानोंने श्रीनाथजीकी प्रतिमाको यक्ष अथवा नाग प्रतिमा माननेकी भूल करी है. कुछ यक्ष प्रतिमाओंमें कटि पर हस्त एवं एक दूसरा हस्त ऊपर उठा हुआ मिलता है, किंतु वह सभी अभयवरद मुद्रामें है. जबकि श्रीनाथजीका ऊर्ध्व हस्त अभयवरद मुद्रामें नहीं है किंतु गोवर्धनधरके अन्य प्राचीन स्वरूपोंसे साम्य रखता है.

इन तथाकथित बुद्धिजीवियोंके कपोल कल्पित निष्कर्ष पूर्वोक्त अध्यायोंमें वर्णित तथ्यों तथा साक्ष्योंसे भी मिथ्या तथा भ्रामक सिद्ध हो जाते हैं. इन्हीं तथाकथित पाश्चात्य शोधकर्ताओंमेंसे एक शेरलेट वॉदेविले अपने ‘The Govardhan myth in northern India’ नामक लेखमें लिखती हैं-

“Though very popular in Vaisnava homes all over India, the Annakut festival is not a Vaisnava festival, the pastoral folk themselves being primarily Saivite and Devi-worshippers.”

किंतु ऐसा इन तथागत शोधकर्ताने किस आधार पर कहा यह वे स्पष्ट नहीं करतीं. संपूर्ण संस्कृत-साहित्यमें गोवर्धन पूजाके कई सारे प्रमाण प्राप्त होते हैं तथा गिरी महा नामसे बौद्ध ग्रंथोंमें भी इसीका वर्णन प्राप्त होता है. इसके पश्चात भी ऐसे कौनसे प्रबल प्रमाण थे जिनके आधार पर संपूर्ण संस्कृत-साहित्यको झुठला कर वे इस निष्कर्ष पर पहुंचीं यह ज्ञात नहीं होता. व्रजके चरवाहे आजके समयमें शिव पूजा पारायण अथवा देवी पूजा पारायण हों इससे यह निष्कर्ष निकलना तो बिल्कुल भी ठीक नहीं कि आजसे 3000 वर्ष पहले भी वे इसी भांति रहे होंगे. संभावना है कि कुछ व्रजवासी चरवाहे प्राचीन कालसे ही शिव-भक्त अथवा देवी-भक्त रहे हो किंतु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि उस कालमें भागवत वैष्णवोंकी स्थिति थी ही नहीं जबकि हमें वैष्णव-भक्ति तथा पूजा-उपासनाके कई सारे ऐतिहासिक एवं साहित्यिक तथा पौराणिक साक्ष्य भी प्राप्त हो रहे हैं. दूसरी ओर व्रजमंडलमें प्राचीन शिव-भक्तों तथा देवी-पूजकोंकी स्थितिका ज्ञान तो स्वयं भागवत तथा अन्य वैष्णव पुराणसे होता ही है, जिनमें स्पष्ट लेख प्राप्त होता है कि कंस एक शिव-भक्त तथा देवी-पूजक व्यक्ति था. कंसको प्राप्त शिव-धनुषका भंग कृष्ण द्वारा ही किया गया था. अतः उपरोक्त निष्कर्ष तो मात्र लेखककी भागवत आदि संस्कृत साहित्य तथा धर्म-ग्रंथोको झुठलानेका हठाग्रह ही कहा जा सकता है.

अपने आधारहीन तर्कको सत्य सिद्ध करनेके लिए वह आगे कहती हैं

It is clear that, for the Brahmanical author of the Visnu-Purana, the anthropomorphic form of Krsna is his essential form (svarupa), even when he chooses to assume the form of the mountain he worships in order to partake of the food offerings; yet if the offerings are to the mountain, the mountain itself has to put on the semblance of a man or beast in order to consume the food offered to it....To the Puranic author, however, the old myth had to be presented somehow in Krishnaite terms, so that it is Kṛṣṇa who takes over the part of the hill in the Puranic account, without ceasing to

play his own part as leader of the Gopa tribe. The author of the Visnu-purana also expresses the consideration due to Brahmans in showing them being fed first, even before the circumambulation of the hill takes place. Nevertheless he does not omit to mention the blood sacrifice that the cow- herd folk are wont to offer to their mountain god. This blood offering, as we have seen, is still present in the cult of the Cowherd-god as practiced by the Oraon aboriginals of Chota-Nagpur, which falls precisely on the same day as the Annaküt festival. But this blood sacrifice to mount Govardhan is no longer mentioned in the Bhāgavata-purāṇa, a definitely later text, as it must have hurt the sensibilities of medieval Vaisnavas.

अर्थात ब्राह्मण पर्वतको अपना इष्ट नहीं मान सकते थे इसके लिए पर्वतको मनुष्यके रूपमें अर्थात कृष्णके रूपमें दिखाना आवश्यक था. किंतु यहां यह बात पूरी तरहसे गलत सिद्ध होती है क्योंकि भारतवर्षमें ब्राह्मण तथा अन्य सभी वर्ग तो प्राचीन-कालसे ही शालिग्राम स्वरूपसे भगवान् विष्णुकी तथा शिवलिंगके रूपमें भगवान् शंकरकी पूजा अर्चना करते आ रहे हैं जो कि मनुष्य रूपमें प्राप्त नहीं होते. इसी प्रकार द्रोणागिरी, कांतानाथ मलयगिरी, विंध्यागिरी, हिमवानपर्वत, नंदादेवी, कैलाश आदि सभी पर्वतोंको देवरूपमें पुराणोंमें स्वीकारा ही गया है. इनके हेतु किए जाते गिरी महा अथवा गिरी यज्ञ तथा गायोंके लिए इसी प्रकार किए जाते गोसव यज्ञोंका वर्णन तो वैदिक शास्त्रों तथा पुराणोंमें प्राप्त होता ही है.

विष्णु पुराणमें अन्नकूट उत्सवमें पशु बलिका वर्णन इसे गैर ब्राह्मण अथवा अवैदिक उत्सव सिद्ध नहीं करता क्योंकि अन्य भी कई वैदिक-यज्ञों यथा सोमयज्ञ, अग्निष्टोम, अग्न्याधान, अतिरात्र आदि यज्ञोंमें पशु बलिका वर्णन प्राप्त होता ही है.

तस्माद्गोवर्धन शैलो भवद्भिर्विविधार्हणैः।
अर्च्यतां पूज्यतां मेध्यान्पशून्हत्वा विधानतः ॥३८॥

तथा च कृतवन्तस्ते गिरियज्ञं व्रजौकसः ।
दधि पायस मांसाद्यैर्ददुश्शैलबलिं ततः ।।४४।।

(विष्णु पुराण)

वैदिक यज्ञोंमें होम किए जानेवाले पदार्थ सात्विक राजसिक तथा तामसिक भेद से कई प्रकारके बताए गए हैं. जहां तामस प्रधान यज्ञ विधिमें पशु-बलिका वर्णन प्राप्त होता है वहीं सत्व प्रधान विधिमें उड़दकी दाल अर्थात माष तथा कुम्हड़ेकी बलीका वर्णन प्राप्त होता है जिसे आचार्यगण पशु तथा मांससे ही संबोधित करते हैं. अतः संभावना बनती है कि विष्णु-पुराणमें अन्नकूट उत्सवमें कही गई पशुबलिसे तात्पर्य इसी कुम्हड़े तथा माषकी बलीसे हो. तात्पर्य है कि अन्नकूट उत्सवमें पशुबलि हो अथवा ना हो दोनों ही स्थितिमें इसे गैर ब्राह्मण अथवा अवैदिक उत्सव नहीं कहा जा सकता.

इसके आधार पर भागवत पर लगाया गया दूसरा आरोपकी भागवत-पुराणकी रचना विष्णु-पुराणके काफी बादकी गई यह भी ठीक नहीं है क्योंकि भागवत-पुराणके अनुसार ही तथा अन्य पुराणोंके अनुसार भी श्रीमद्भागवत सारस्वत-कल्पकी कृष्ण अवतारकी कथाको कहता है.

मतस्य पुराणके 'सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ये स्युर्नरामरा। तद् वृत्तान्तोद्भवं लोके तद्भागवतमुच्यते' वचनके अनुसार भागवत उसे कहना चाहिये जिसमें सारस्वत-कल्पमें हुए अमर-नरोंका वृत्तान्त हो. भागवतमें श्रीकृष्ण चरित्रका जो वर्णन है वह सारस्वत कल्पका ही है जिसका कि बृहद्वामन पुराणके **'आगामिनि विरंचौ तु जाते सृष्ट्ययर्थमुद्यमे, कल्पं सारस्वतं प्राप्य व्रजे गोप्यो भविष्यथ'** इस श्लोकसे भी समर्थन होता है. इसके साथ ही भागवतमें प्रसंगवश ब्राह्म और वाराहकल्प की भाँति पाद्मकल्पका' **(पाद्मं कल्पमथो श्रृणु-**'द्वितीय स्कन्ध) भी संक्षिप्त वर्णन आता है.

अतः अन्य पुराणोंमें दूसरे कल्पकी कृष्ण अवतार कथा होनेके कारण लीलाके कुछ भागोंमें भेद भी पाया जाता है. अतः भागवतमें पशुबलिका वर्णन ना आनेका अर्थ मात्र इतना ही है कि सारस्वत-कल्पमें ऐसा कोई विधान भगवान् कृष्णने नहीं किया. अन्य संभावना यह भी है कि सत्वप्रधान भागवत-पुराणमें सात्त्विक-गुणोंका

वर्णन होनेसे पशुबलिका वर्णन प्राप्त नहीं होता. अतः इसे विष्णु-पुराणके पश्चातका कहनेका कोई प्रबल प्रमाण नहीं है. पुरातात्विक दृष्टिसे भी भागवत-संप्रदायकी स्थितीके कई प्रमाण मौर्य पूर्व कालसे ही प्राप्त होने लगते हैं यथा इंडो ग्रीक राजाओं द्वारा जारी किए गए कृष्ण-बलरामको चिन्हित करते सिक्के, चिलास एवं टिकुला में प्राप्त कृष्ण-बलरामके अंकन सहित प्राचीन शैलचित्र, पतंजलि- पाणिनि- भास आदि संस्कृतके प्राचीन लेखकों द्वारा कृष्ण एवं बलरामका स्पष्ट उल्लेख, प्राचीन बौद्ध व जैन ग्रंथोंमें कृष्ण एवं बलरामका उल्लेख तथा हेलिओडोरस द्वारा भागवत-धर्म स्वीकार करनेकी कंठोक्त स्वीकृति जिन्हें पूर्वमें देखा जा चुका है. भागवत संप्रदायकी इस प्राचीन स्थितिसे संप्रदायके प्रमुख ग्रंथ श्रीमद्भागवत महापुराणकी भी प्राचीन कालसे ही स्थितिका पता चलता है. भारतीय सनातन धर्मकी परंपरामें भी समस्त पुराणों, वेदों तथा वैदिक साहित्यको एक ही कालका अर्थात कलयुगके प्रारंभका माना जाता है अतः जब परंपरा एक बातको पुष्ट कर रही है पुरातात्विक साक्ष्यसे भी जिसकी सिद्धि हो रही है ऐसे सिद्ध तथ्यको जबरदस्ती तोड़ मरोड़के अपना निष्कर्ष सिद्ध करना तो एक हठाग्रह ही नहीं वरन दुराग्रहको भी सूचित करता है. आगे लेखक कहती हैं

Among the images found in the oldest Naga temple at Sonkh (belonging to the Kuṣaṇa period), we notice a Naga deity in abhayamudra and a door-relief showing a Naga climbing a rocky mountain. A medallion on a pillar depicts a Naga having a human shape in the upper part of its body and carrying three lotus stalks in his uplifted right hand. Another fragment shows a Naga with human-shaped legs and a snake upper-body, from which again arms are sticking out. The analogies of these ancient images with the Śrī Nathji icon are rather striking. These analogies suggest that the latter might be interpreted as a fully anthropomorphic version of an older half-anthropomorphic Näga deity.

सौंखगांव एवं व्रजके अन्य स्थानोंसे प्राप्त नाग प्रतिमाओंकी समानता बलरामके विग्रहसे तो की जा सकती है और इसी संबंधसे श्रीकृष्ण अर्थात गोवर्धननाथजीके स्वरूपसे भी इनका संबंध माना जा सकता है. किंतु गोवर्धन नाथजीका स्वयंका विग्रह किसी भी प्रकारसे किसी नाग-देवताका स्वरूप नहीं कहा जा सकता क्योंकि ना तो इस स्वरूपमें सात-फनवाले नागका अंकन है और ना ही ऊपरी-भाग अथवा निचला भाग सर्प आकृतिसे साम्य ही रखता है. अर्ध भाग मनुष्यका और अर्थ भाग सर्पका ऐसे कई नागोंका वर्णन पुराणोंमें प्राप्त होता है अथवा राहु तथा केतु का चित्रण भी इसी प्रकारसे पुराणोंमें प्राप्त होता है. अतः नागोंके वर्तमान समय तक प्राप्त स्वरूप श्रीनाथजीके विग्रहको नागदेवका विग्रह सिद्ध करने हेतु काफी नहीं है. साथही श्रीनाथजीकी पीठिकामें अंकित ग्वाल, गौआदि चिन्ह इनके गोवर्धनधारी गोपालके होनेको ही इंगित करते है ना कि यक्ष अथवा नागके.

लेखक आगे कहती हैं

The prevailing local belief seems to have been that the Nagaraja underlying Govardhan had its head ("mouth') at the Manasi Ganga and its tail at Puchrī.......It appears much more likely however that the 'Manasi Ganga' owes its name to the snake-goddess, Manasa Devi, whose temple rises on high ground above its bank........Whatever may be said or supposed of its Vaisnava connections and later Vaisnava interpretations, the cult of the Govardhan hill, as seen from Braj itself, reveals a non-Vaisnava background.

गिरिराज गोवर्धनपर्वतके अंदर एक वृहद नागके होनेकी बात ना तो व्रजमें लोकमान्यता प्राप्त है और ना ही किसी संस्कृत अथवा व्रजभाषाके सांप्रदायिक साहित्यमें ही इस बातका वर्णन प्राप्त होता है. वरन व्रजभाषामें तो नाग अथवा नग शब्द पर्वतका ही पर्यायवाची है जैसा निम्न पदसे सिद्ध होता है

चिंतामणि श्रीगोवर्धन नग चिंतामणि श्रीगोवर्धनधर।
अभिमत दान श्याम सुंदरको जो याचत सो सो पावत नर।।

करुणा धाम दीन जनपालक ब्रह्म पर्वताकार।
गावत वेद पुराण महात्तम हरि लीला भंडार।।

इंद्र कोपते व्रजजन राख्यो, पियो प्रलयको पानी।
कृष्ण कराब्ज ललित आसन पर शोभित मंगल खानी।।

ठाड़ो किए आस चरणनकी भक्ति भीख हसिं देहु।
महादीन वल्लभ शरणागत कृपा सिंधु सुधि लेहु।।

संभवत: पर्वतके पर्यायवाची इसी नाग शब्दके कारण लेखकको पर्वतके अंदर नागदेवताके होनेकी भ्रमणा हो गई होगी.

यह सत्य है कि मानसी-गंगाके निकट मनसा-देवीका प्राचीन मंदिर आज भी स्थित है किंतु मनसा-देवीके कई मंदिर भारत भरमें पाए जाते हैं जिनका शास्त्रोंमें उल्लेख पाया जाता ही है. ऐसी स्थितिमें जब मानसीगंगाका स्पष्ट उल्लेख संस्कृत ग्रंथों व साहित्यमें प्राप्त होता है तो इसे व्यर्थ मनसा-देवीके साथ जोड़ना ठीक नहीं.

अतः लेखकका यह निष्कर्षकी श्रीगोवर्धनाथजी एवं गोवर्धनपर्वतके पूजनका मूल उद्गम वैष्णव-संप्रदाय अथवा वैष्णव-भक्ति न होकर कुछ और रहा होगा यह मात्र लेखककी व्यक्तिगत भ्रमणा अथवा गलतफहमी ही सिद्ध होती है.

पुनः इस बातका निराकरण अन्य प्राचीन गोवर्धनधारी कृष्णकी उपरोक्त दृष्टित प्रतिमाओंसे भी हो जाता है, क्योंकि ये सभी प्रतिमाएं श्रीनाथजीका ही अनुकरण करते हुए निर्मितकी गई थीं. अतः श्रीनाथजीका महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा सेवित यह स्वरूप जो वर्तमानमें नाथद्वारामें स्थित है मूर्तिकलाकी दृष्टिसे गोर्वधनधारी कृष्ण गोपालका कुषाणकालीन स्वरूप तो कहा ही जा सकता है.

परंपरागत दृष्टिकोणसे देखा जाए तो पौष्कर-संहितामें वर्णित श्रीगोवर्धननाथजीका यह स्वरूप अत्यंत प्राचीन कालसे ही गिरिराज गोवर्धनकी कंदरामें स्थापित एवम पूजित रहा है.

इस प्रकार इस शोधमें हमने देखा की कैसे वैदिक साहित्यमें मूर्ति पूजा तथा भक्तिमार्गका वर्णन प्राप्त होता है एवं इससे जुड़े पुरातात्विक साक्ष्य भी भरपूर मात्रामें प्राप्त होते हैं. हमने यक्ष, नागों, शैव तथा वैष्णव मूर्ति पूजाके प्राचीन प्रमाण देखे जिनसे सिद्ध होता है कि भारतमें प्राचीन वैदिक कालसे ही मूर्ति पूजाका प्रचलन रहा है जिससे इनके साथ जुड़े भक्तिमार्गीय संप्रदायों यथा शैव, भागवत आदिका भी अस्तित्व सिद्ध होता है. भागवत संप्रदायके आराध्याय भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णके गोवर्धनधर स्वरूपकी प्राचीनता भी हमने देखी. हमने देखा की गोवर्धनधर श्रीनाथजीका स्वरूप पुरातात्विक दृष्टिसे उत्तर कुषाण कालीन कहा जा सकता है. हमने देखा कि किस प्रकार ठाकुर देवदमन श्रीनाथजीका 15वीं शताब्दी ईस्वी में स्वतः पुनर् प्राकट्य हुआ, किस प्रकार महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्यको अपनी सेवा प्रकट करनेकी आज्ञा श्रीनाथजीने दी, तथा किस प्रकार 1519 ईस्वी में श्रीनाथजीका मंदिर निर्मित होनेके उपरांत महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य द्वारा श्रीमाधवेंद्रपुरीको गुरु दक्षिणा स्वरूप श्रीनाथजकी सेवा दी गई. हमने देखा की किस प्रकार श्रीनाथजीका देवद्रव्य चुराने वाले बंगाली पुरोहितोंको श्रीमहाप्रभुजीके कृपापात्र सेवक श्रीकृष्णदास अधिकारीजीने गोस्वामी श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरणकी आज्ञासे हटाया. हमने बंगाली पुस्तकोंमें आते अनैतिहासिक प्रसंगोंकी भी समीक्षा की तथा समस्त पूर्वाचार्योंके संस्कृत साहित्य तथा सिद्धांतोंसे सम्मत शुद्ध तथ्योंको देखा. इस प्रकार वल्लभ संप्रदायके परमाराध्य श्रीगोवर्धनधर श्रीनाथजीकी ऐतिहासिकताको सिद्ध करता यह शोध समाप्त हुआ.

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

चित्र -1 : महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी द्वारा तीर्थपुरोहित कृष्णसेवक गुच्छिकारको लिखित वृत्तिपत्र

चित्र -2 : श्रीवल्लभके द्वारा प्रदत्त नागरी लिपिमें लिखित वृत्ति पत्र

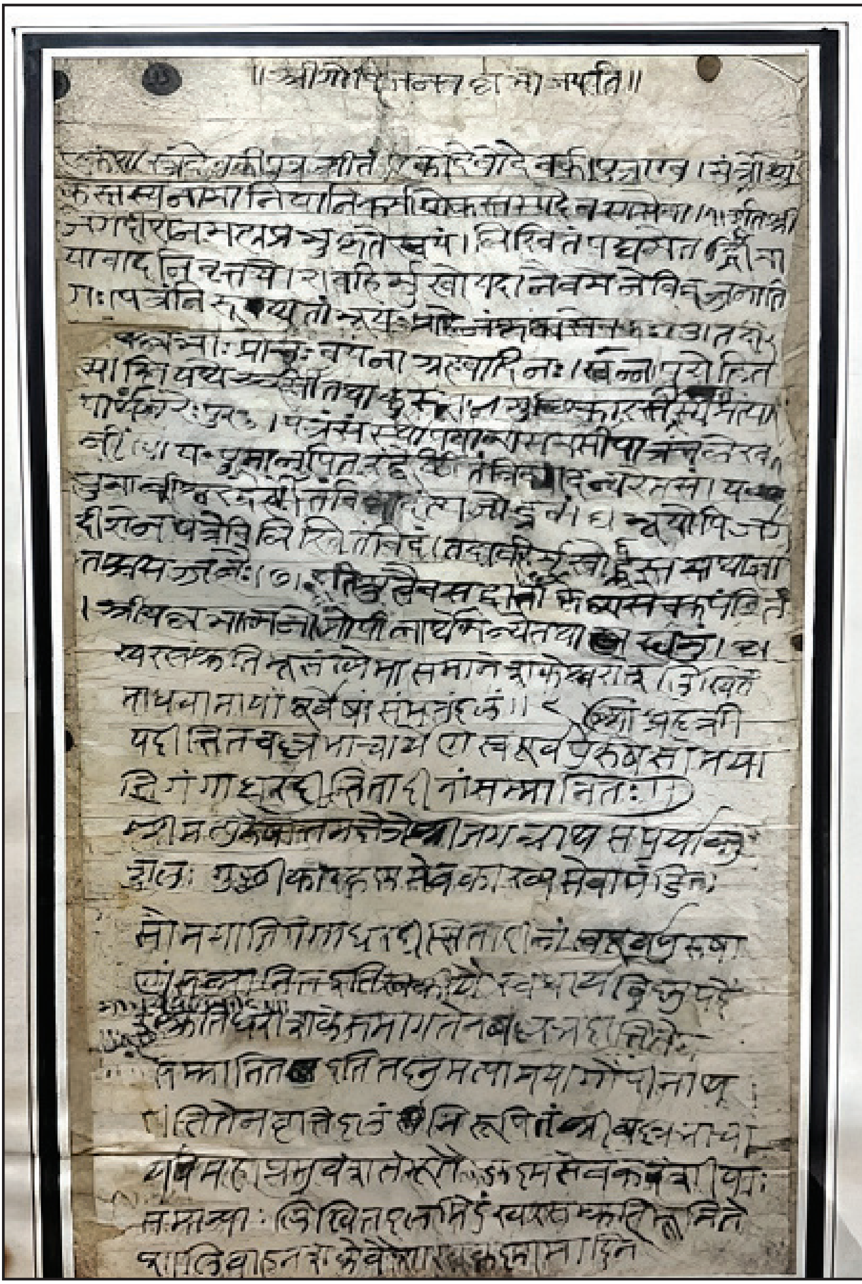

चित्र -3 : गोस्वामी श्रीगोपीनाथजी प्रभुचरण द्वारा लिखित वृत्तिपत्र

चित्र -4 : मुकुन्द राय जी

चित्र -5 : मदन मोहन लाल जी

A piece of Handwriting of Shri Vallabhacharyaji as
iscovered in his letter written in Kanarese to one Narottam.
'hom he recognised as his family priest—

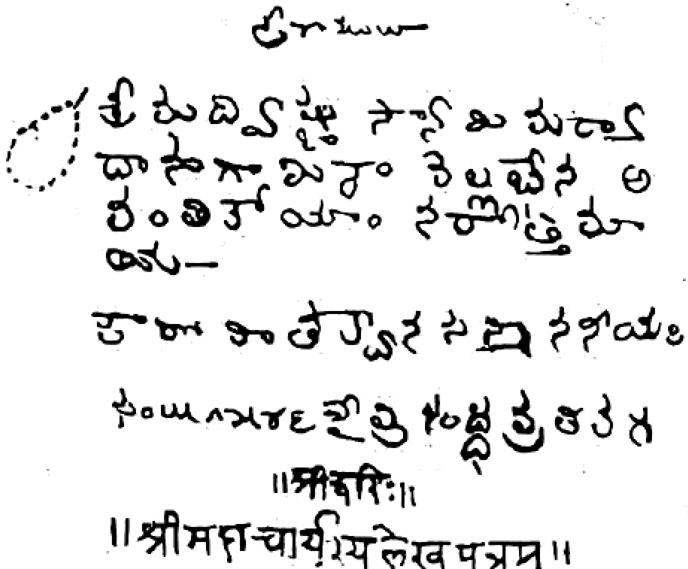

(Translation of a Sanskrit writing written in Kanarese)

Vallabha, the follower of the Maryada (i. e. doctrines) of Shrimad 'ishnu Swami honours (recognises) Narottam of Awantika (i. e. Ujeni) s a Purohit (i. e. family religious priest): The 1st day of Chaitra hudha of Samvat 1546 (22nd March 1490).

Shri Hari.

(This) Lekha Patra (i. e. a deed of document) (is passed) by the reat Acharya (Vallabha) to (the above Narottam.)

ssued subject to rule 34
f the High Court (Original
ide (Rules of 1922. . .)

A true translation.
(Sd) G. R. WAGLE,
Translator, High Court, Bombay.

मु. म. (अहमदाबाद) आषाढ़ सं० १६८४

चित्र- 6 : महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी द्वारा तीर्थपुरोहित नरोत्तम मिश्राको लिखित वृत्तिपत्र

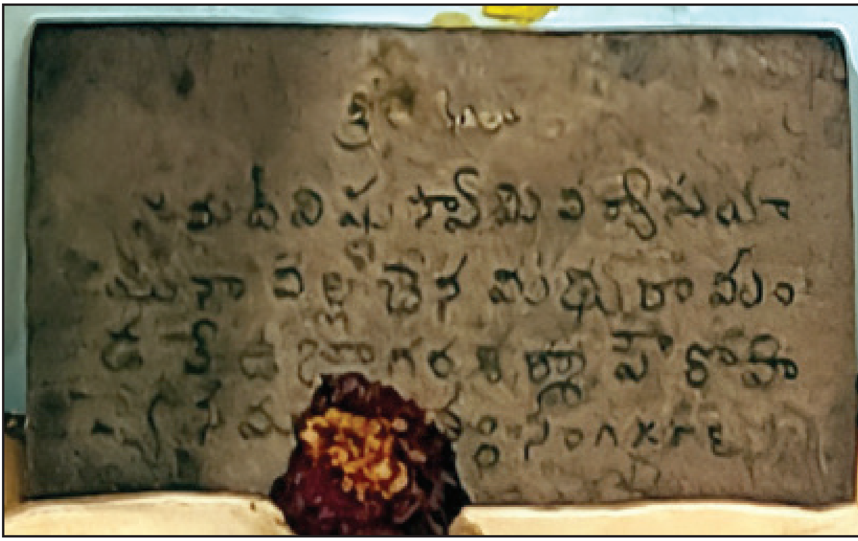

चित्र- 7 : उजागर चौबेजीके वंशजोंके यहां विद्यमान महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य द्वारा प्रदत्त पत्र.

चित्र- 8 :श्रीवल्लभ द्वारा सेवित गोकुलनाथप्रभु

चित्र- 9: महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्यजी द्वारा रूक्मिणी वावसे प्रकट कर द्वारकाधीश मंदिरमें स्थापित श्रीद्वारकाधीशप्रभु (वर्तमान बेट द्वारकामें विराजित)

चित्र-10 :भारमल द्वारा निर्मित मंदिर (वर्तमान खंडहर)
व पूरणमल क्षत्री के द्वारा निर्मित मंदिर (श्वेत)

चित्र- 11 : महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यके कथन मात्रसे तत्काल प्रकट हुए श्रीमथुरानाथप्रभु

चित्र- 12 : त्रिवेणी संगमसे स्वामिनी सहित प्रकट हो स्वयं आज्ञा कर श्रीवल्लभके गृह पधारने वाले श्रीविठ्ठलनाथप्रभु(ऊपर), श्रीयमुनाजीसे प्रकट हो स्वयं आज्ञा कर श्रीवल्लभके गृह पधारने वाले श्रीगोकुलचंद्रप्रभु (नीचे)

चित्र- 13: वर्तमान दक्षिण कर्नाटकमें बांदीपुर राष्ट्रीय उद्यानमें स्थित प्राचीन हिमवद गोपाल स्वामी मंदिर

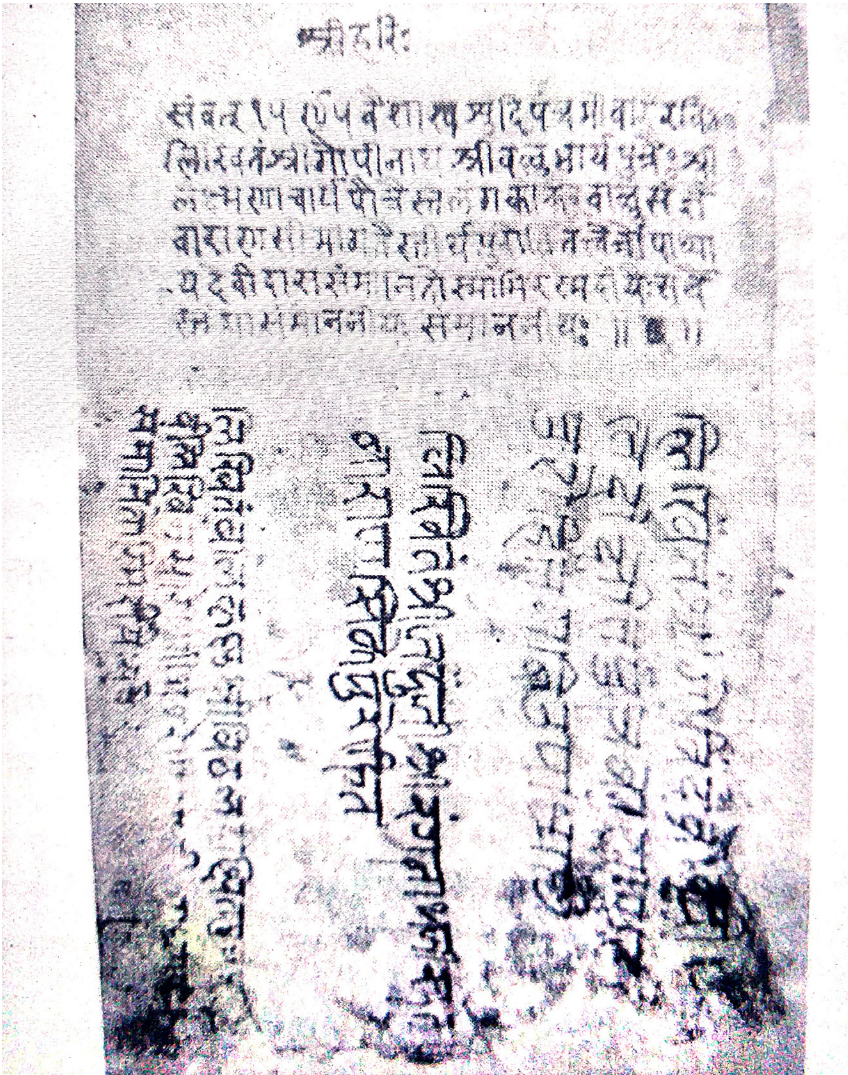

संवत् १५९५ वैशाख सुदि पञ्चमी वार रविः लिखितं श्रीगोपीनाथ-श्रीवल्लभाचार्य पुत्रैः श्रीलक्ष्णाचार्यपौत्रैः तैलङ्ग-कांकरवाल्लु-संज्ञैः वाराणसीम् आगतैः तीर्थपुरोहिततत्वेन उपाध्याय-देवीदासः सम्मानितो अस्माभिर् अस्मदीयै सर्वैस् तथा सम्माननीयः सम्मानीयः ।।छ।

चित्र- 14: गोपीनाथजीका काशीमें देवीदास उपाध्यायको प्रदत्त वृत्तिपत्र

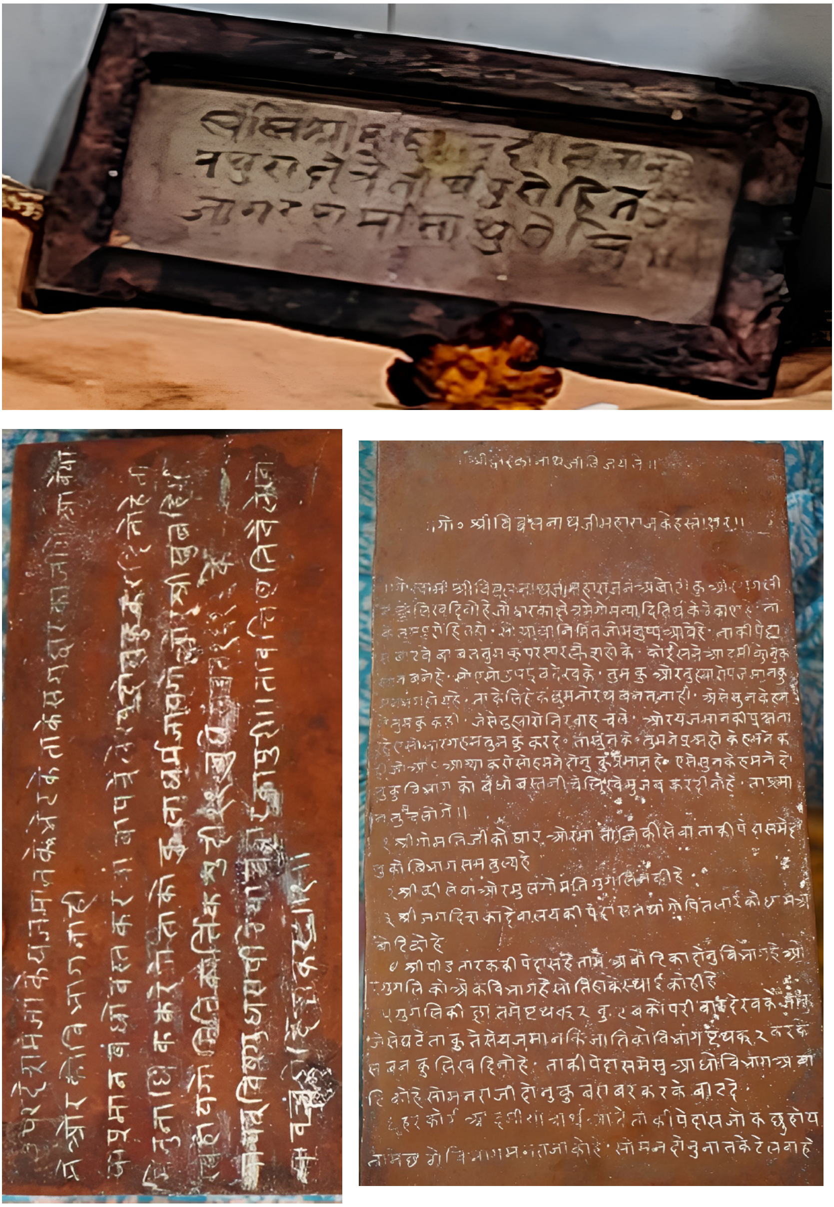

चित्र- 15: गुसांईजीके द्वारिका (नीचे) और मथुरा (ऊपर) में दिये गए वृत्तिपत्र

चित्र- 16: गुसांईजीका जगन्नाथपुरीका लेखपत्र

चित्र -17 : नारायणदास द्वारा प्रकटित तथा श्रीगोपीनाथजी द्वारा पाट बैठाए गए श्रीमदनमोहन स्वरूप (वर्तमान: करौलीमें विराजित)

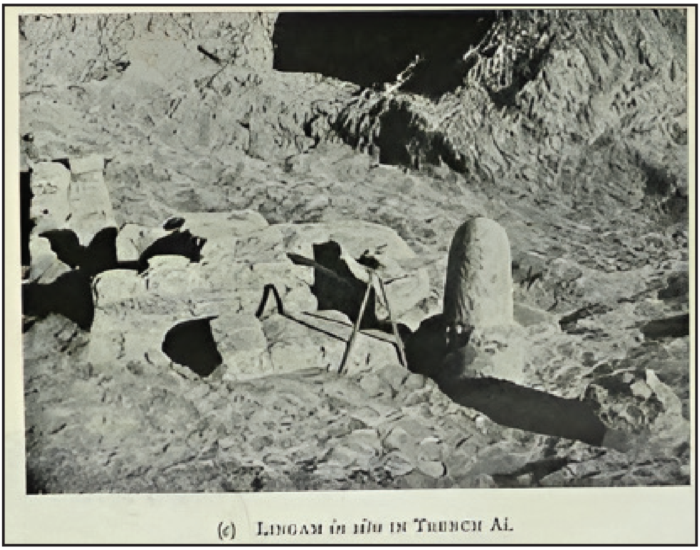

(c) Lingam in situ in Trench AL

चित्र-18: (Photo – Report of Archaeological Excavations at Harappa Carried Out by M.S.Vats Between 1920-21 & 1933-34) 26.

चित्र-19/1 स्रोत: इंटरनेट (स्वस्तिक, यज्ञकुंड, ब्रह्म बैल, अश्वत्थ पत्ती युक्त रूपांकन)

चित्र-19/2 स्रोत: इंटरनेट (हस्ताभूषण युक्त नर्तकी, पशुपति मुहर)

(चित्र-20:- मौर्य कालीन एक मुखी शिवलिंग 300 B.C.)

(चित्र-21: कर्तिकेय, दुर्गा 100 ईस्वी -200 ई.)

चित्र -22: चतुर्मुख शिवलिंग 300 ई., शिव लकुलीश दूसरी शताब्दी ई.

चित्र-23: दीदर गंजसे प्राप्त यक्षिणी 300 ईसा पूर्व

चित्र-24: वर्तमान परखममें यक्ष पूजाका स्थान.

चित्र-25: मणिभद्र यक्ष तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व, परखम गांव,मथुरासे प्राप्त,जिसे लोग जखैया देवताके नामसे पूजा करते

चित्र-26: जखैन यक्ष जिसकी पूजा वर्तमान समयमें भी देखी जा सकती है (दक्षिण)एवं मुग्दरपाणि यक्ष,मथुरा

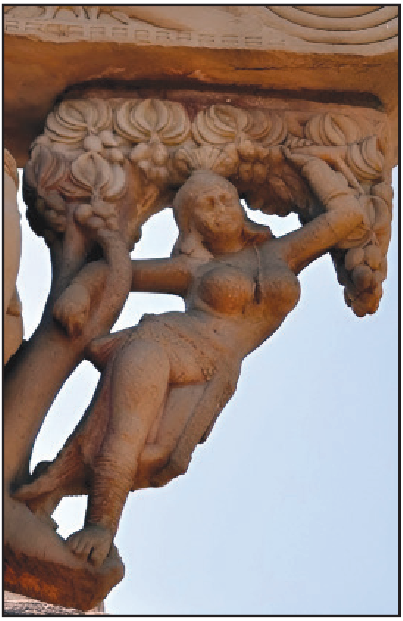

चित्र-27: वाम-शालभंजिका यक्षिणी (सांची तोरण शुंग कालीन), चंदेल कालीन शालभंजिका यक्षिणी (दक्षिण)

चित्र 28: प्रसिद्ध ग्यारसपुर शालभंजिका (यक्षिणी) उत्तरगुप्त कालीन

चित्र-29: गुप्त-कालीन शालभंजिका यक्षिणी (ऊपर) व सातवाहन कालीन शालभंजिका (नीचे)

चित्र-30 : हैगुंडा यक्ष, दूसरी शताब्दी ईस्वी

चित्र-31: छार गांवसे प्राप्त नाग प्रतिमा, कुषाण पूर्व

चित्र-32: सौंख गांवमें चामुंडा माताके रूपमें पूजित नाग प्रतिमा

चित्र-33: वियतनाम में प्राप्त हुई प्राचीन विष्णु प्रतिमा

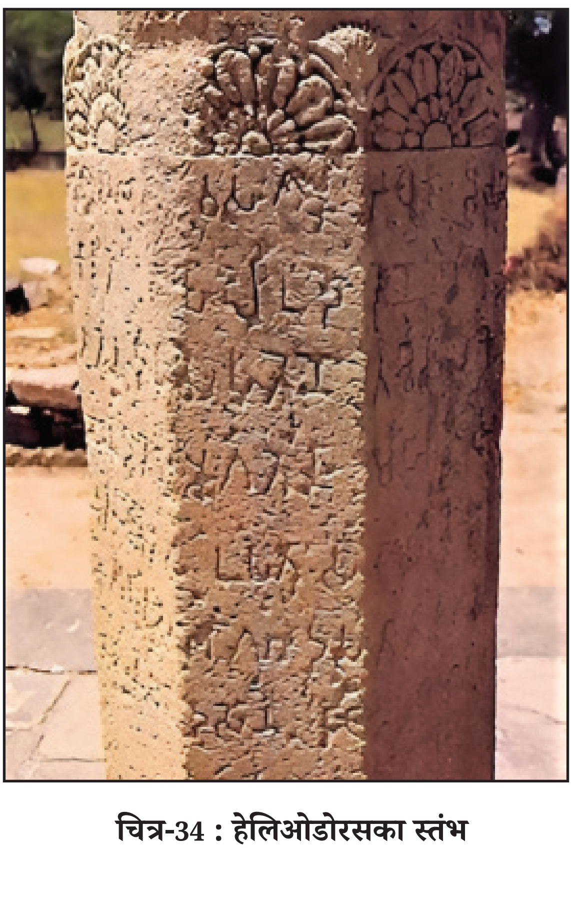

चित्र-34 : हेलिओडोरसका स्तंभ

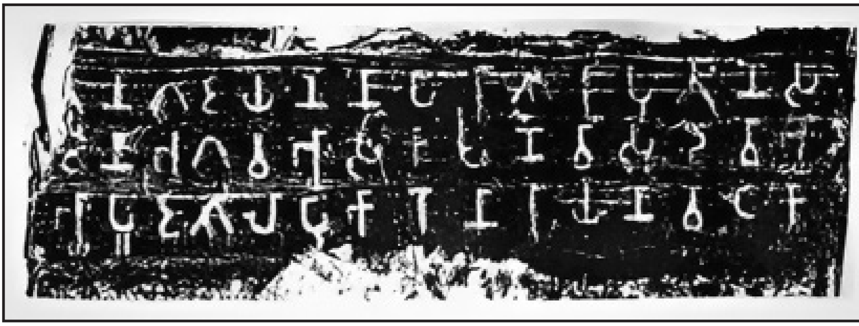

चित्र-35: घोसुंडी शिलालेख

1 (Karito=yam rajna Bhagava)tena Gajayanena Parasariputrena Sa-

2 (-rvatatena Asvamedha-ya)jina bhagava[d*]bhyam Samkarshana-Vasudevabhyam

3(anihatabhyamsarvesvara)bhyampujasila-prakaroNarayana-vatika.

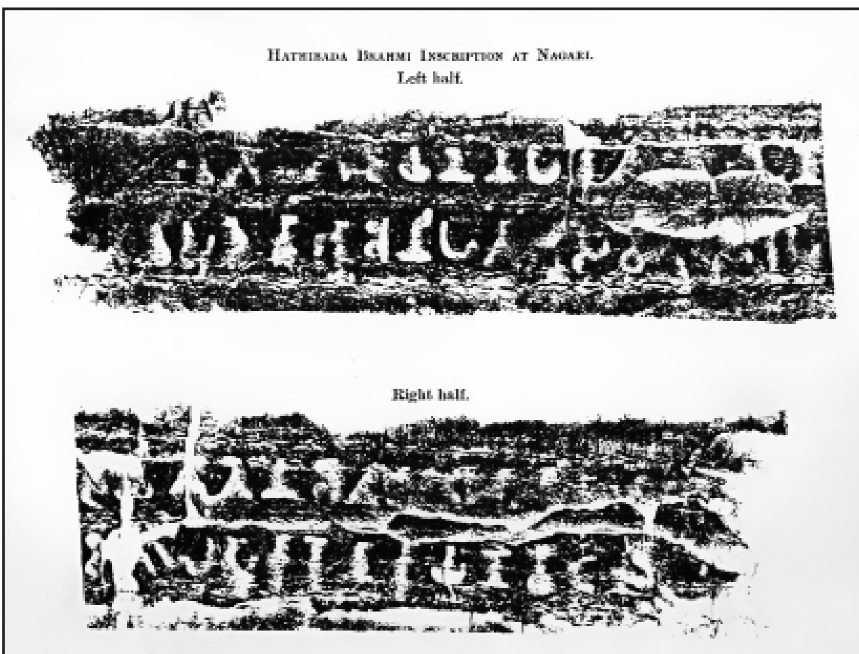

चित्र-36. : हाथी बाड़ासे प्राप्त शिलालेख (200से 300 ईसा पूर्व)

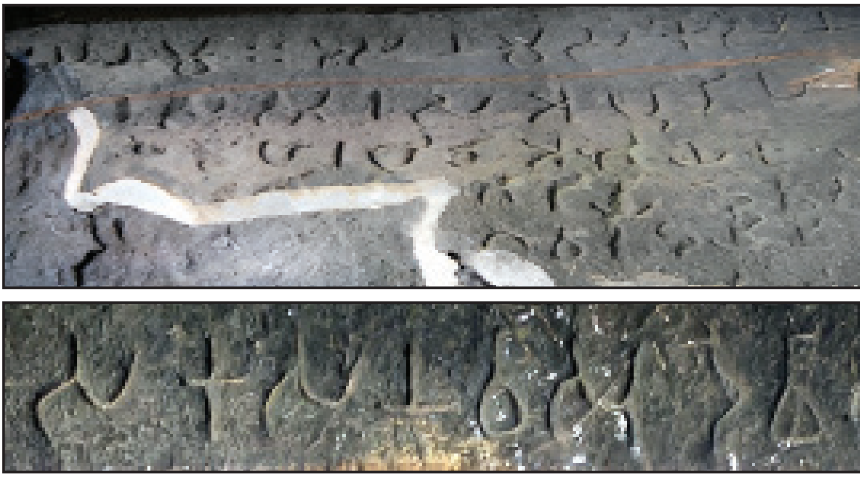

चित्र-37: नाणाघाट शिलालेख , संकर्षण (𑀲𑀁𑀓𑀱𑀡) तथा वासुदेव (𑀯𑀲𑀼𑀤𑁂𑀯) के उल्लेख सहित

चित्र-38.: महाक्षत्रपसौदासका शिलालेख

6. वसुना भगव(तो वासुदे), 7. वस्य महास्थान ... (चतु:षा),

8. लाम तोरणं वे(दिकाः पृति) , 9. स्थापितो प्रीतो भ(वतु वासु),

10. देवः स्वामीस्य [महाक्षत्], 11. पस्य सोडश [स्य] ., 12. सम्वर्तेयताम्।

चित्र-39: चिलासमें प्राप्त कृष्ण बलरामके शैलचित्र

चित्र-40: टिकलासे प्राप्त कृष्ण बलराम एवं सुभद्राके शैल चित्र.

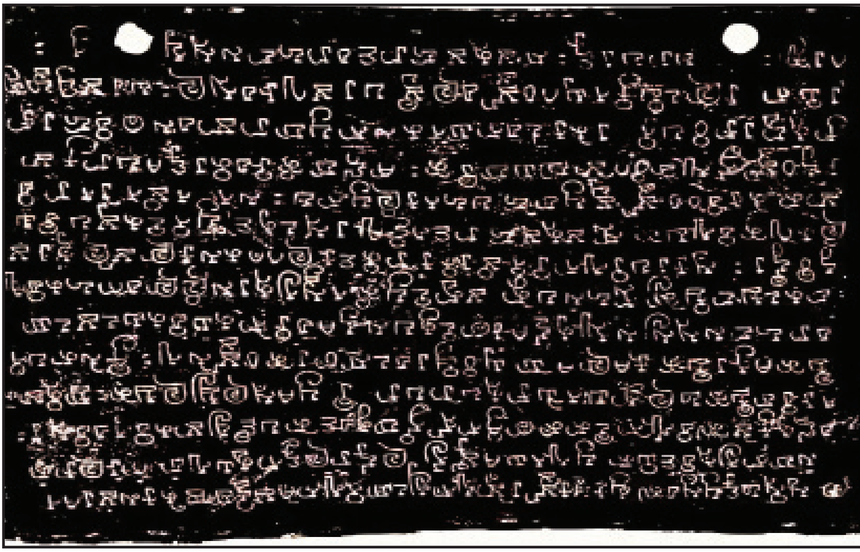

चित्र-41: द्वारिका एवं कृष्णका उल्लेख करता पालीताणासे प्राप्त सिंहादित्यका ताम्रपत्(574AD)

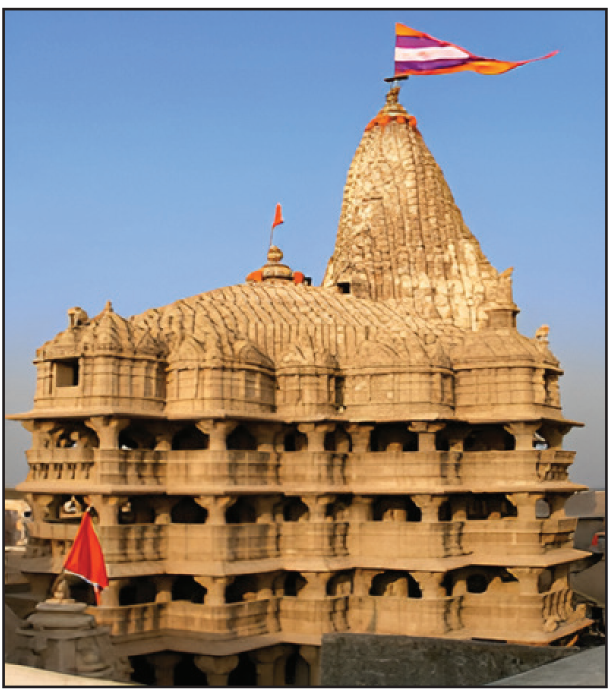

चित्र-42: द्वारिकाका जगत मंदिर जिसके दूसरे तल पर ब्राह्मी शिलालेख प्राप्त हुआ.

चित्र-43: वृष्णिराजके चांदीके सिक्के, उत्तर पंजाबसे प्राप्त
(अंकित- वृष्णिराजन गणस्यत्रातरस्य) कनिंघम१८९१:७०

चित्र-44: वासुदेव एवं संकर्षणके अंकन सहित इंडोग्रीक सिक्के 200B.C. (बैक्ट्रियाकेशासक एगाथोक्लीज़केकालमें निर्मित)

चित्र-45: सुभद्राके अंकन सहित इंडोग्रीक सिक्के 200B.C.
(बैक्ट्रियाकेशासक एगाथोक्लीज़केकालमें निर्मित)

चित्र-46: बलरामके अंकन सहित इंडोग्रीक सिक्का, राजा एज़ेसके कालमें निर्मित (100ई.पू.)

चित्र-47: बलराम शुंगकालीन(राइट150BC) मौर्यकालीन(लेफ्ट 200BC), मथुरासे प्राप्त. मौर्यकालीन बलरामकी इस प्रतिमामें हल एवम गदा तथा पृष्ठ भागमें शेषनाग भी देखा जा सकता है.

चित्र-48:बलराम शुंग कालीन(बाएँ) कुषाणकालीन (दायें)

चित्र-49 :कुषाणकालीन (नाग) बलराम 100AD , मथुरासे प्राप्त (बाएँ)
चित्र-50: गुप्त कालीन बलराम (दायें)

चित्र -51: बलदाऊजी , दाऊजी गांव, मथुरा. हस्तमें धारण किया हुआ वारुणी पात्र एवं अभय वरद मुद्रा तथा पृष्ठ भागमें शेषनागके सात फन विशेष दर्शनीय

Fig. 4. Eastern side of 56.394.
Photograph, State Museum, Lucknow

Fig. 6. Southern side of no. 56.394.

चित्र -52: वासुदेव कृष्ण संकर्षणचतुर्व्युह, 200 ईसा पूर्व

चित्र-53.: कुषाण कालीन फलक,100 AD, नख पर गोर्वधन धारण करे हुए,ललित त्रिभंगी मुद्रामें खड़े कृष्ण, ग्वाल बाल, गोपिकाओं तथा गांवके साथ संभवत: प्राचीनतम अंकन

चित्र-54. : शंख चक्र गदापद्मधारी कृष्ण(लेफ्ट) एवं वेणुधारी कृष्ण(राइट), प्रथम शताब्दी, कुषाणकाल

चित्र -55.: गोवर्धनधारी कृष्ण (गोपाल), उत्तर कुषाण कालीन 200 ईस्वी, जतीपुरासे प्राप्त,मथुरा संग्रहालय

चित्र-56: गोवर्धनधारी कृष्ण, दूसरीसे तीसरी शताब्दी ईस्वी,बीकानेर

चित्र -57:गोवर्धनधारी कृष्ण, गुप्त कालीन,चौथी शताब्दी ईस्वी,भारत कला भवन,काशी (इस्लामी अक्रांताओ द्वारा खंडित)

चित्र-58 : कड़ा मानिकपुरसे प्राप्त,गुप्त कालीन पूजित विग्रह 500 ईस्वी (आक्रांताओं द्वारा खंडित किया गया)

चित्र-59 : गोर्वधनधारी कृष्ण, गुप्त कालीन, 500 ईस्वी, ग्वालियरसे प्राप्त. कटी अवलंबित हस्त तथा गाएं विशेष दर्शनीय

चित्र-60:उत्तर गुप्त कालीन, गोवर्धनधारी कृष्णका पूजित विग्रह,यमुनासे प्राप्त(बचाने हेतु यमुनामें छुपायागया) प्रतिमामें कटी अवलंबित हस्त ग्वाल तथा गए विशेष ध्यान देने योग्य हैं

चित्र-61.: गुप्तकालीन गोवर्धनधारी कृष्ण गतश्रमनारायणसे प्राप्त, मथुरा

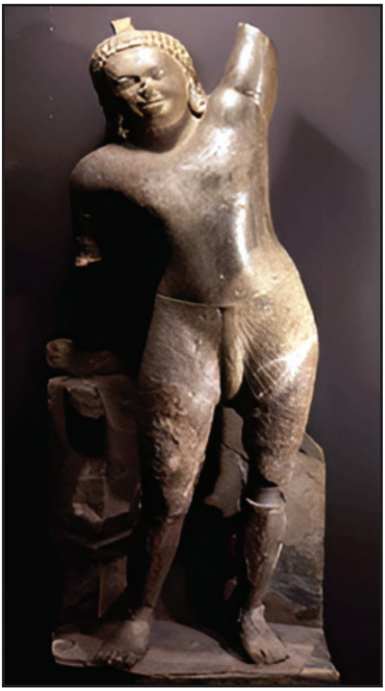

चित्र-62: गिरिधर कृष्ण,600 ईस्वी बादामी(लेफ्ट), एवं गोर्वधन धारी कृष्ण,कंबोडियासे प्राप्त, 500 ईस्वी,जोकी गोवर्धनधारीस्वरूपके पूजनको 2000 वर्ष प्राचीन सिद्ध करता है.

चित्र-63: गोवर्धन धारी कृष्ण, आठवी शताब्दी ईस्वी, मध्य प्रदेश से

चित्र-64: गोवर्धनधारी कृष्ण,चतुर्भुजस्थान, 800 ईस्वी,उत्तर गुप्त काल

चित्र-65: कृष्ण विट्ठल स्वरूप में, आठवी शताब्दी ईस्वी,
सांची मध्य प्रदेश एवं गुप्त कालीन नृसिंह 500AD

चित्र-66: गोवर्धन धारी कृष्ण, 900 ईस्वी,उत्तर गुप्त कालीन। गाय वानर तथा मुकुटके ऊपर तोतेका अंकन विशेष दर्शनीय तथा उत्तरोत्तर होते मूर्तिकलामें परिष्कारका विशेष दर्शन इस प्रतिमामें होता है

चित्र-67. चित्र गोवर्धनधारी कृष्ण सहित बलराम दसवीं शताब्दी ईस्वी

चित्र-68 : गोवर्धनधारी कृष्ण, अमृतेश्वर मंदिर 1196AD, अमृतपुरा

चित्र-69 : गोवर्धनधारी कृष्ण, इंद्रदमन स्वरूप, 17वीसे 18वी शती ईस्वीके मध्य, श्रीनाथजीकी प्रतिकृतिके रूपमें निर्मित.

चित्र-70: गोवर्धनधारी कृष्ण,अठारहवीशती ईस्वीमें निर्मित, मथुरा

चित्र-71: महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य द्वारा प्रकटित एवं सेवित प्रभु श्रीगोवर्धननाथजी

प्रामाणिक कालानुक्रम

1409 A.D. :- श्रीनाथजीके ऊर्ध्व हस्तका गोविंद कुंडके समीप प्राकट्य तथा नागपंचमीके दिन प्रथम दर्शन. आन्योरमें नागपंचमीको मेला लगना प्रारम्भ

(स्रोत श्रीनाथजीकी प्राकट्य वार्ता)

1478 A.D. :- वैशाख वदि एकादशी (वरुथिनी एकादशी)को श्रीनाथजीके मुखका प्राकट्य तथा महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजीका भीमारथीतट पर , चौड़ा नगरके निकट, प्राकट्य. चौड़ानगरमें लक्ष्मण भट्टजीके शिष्य कृष्णदास दीवानके घर श्रीवल्लभका जातकर्म तथा नामकरण संस्कार

(प्राकट्य वार्ता, प्राचीन निज वार्ता, वल्लभ दिग्विजय, संप्रदाय प्रदीप, श्रीवल्लभाचार्य जन्म पत्रिका)

गोवर्धन पर्वतके ऊपर स्थित शिलामें गौ द्वारा दूध श्रवित होता देख, शिला हटाने पर निकली कंदरासे सद्दू पांडे आदि व्रजवासियोंके समक्ष एक दिव्य बालकका प्राकट्य जिसने अपना नाम देवदमन बताया

(84 वैष्णव वार्ता)

माधवेंद्र पुरीका आन्योर आगमन तथा दिव्य बालकके दर्शन होना तथा व्रजवासियोंके संग से माधवेन्द्र पुरीजीको श्रीनाथजीकी ऊर्ध्व भुजा सहित मुखारविंदके दर्शन व उसी स्थल पर पर्वत ऊपर माधवेन्द्र पुरी द्वारा सेवा करना. साथ ही माधवेंद्र पुरीको श्रीनाथजीकी भविष्यमें श्रीवल्लभ द्वारा सेवा प्रदान किये जानेकी आज्ञा, तदनंतर भारत परिक्रमा हेतु माधवेन्द्र पुरीका प्रस्थान तथा कुछ वर्ष पश्चात् वाराणसीमें श्रीवल्लभका शिक्षा गुरु होना.

(श्रीनाथजीकी प्राकट्य वार्ता)

1486 A.D. :- चैत्र शुक्ल नवमी, श्रीवल्लभका यज्ञोपवीत संस्कार तथा लक्ष्मण भट्टजी द्वारा श्रीवल्लभको गायत्री मंत्र तथा गोपाल मंत्र की दीक्षा प्रदान करना व विभिन्न शास्त्रोंके अध्ययनका आरंभ

यजुर्वेद - श्रीविष्णुचित्त उपाध्याय

सामवेद, ऋग्वेद - श्रीतिरुमल्ल दिक्षित

षड्दर्शन - श्रीआंध्रनारायण दीक्षित

श्रीमद्भागवत, गीता आदि वैष्णवशास्त्र - श्रीमाधवेन्द्रपुरी

अथर्ववेद, पंचरात्र आगम व वेदांग - श्रीलक्ष्मण भट्ट

(संप्रदाय प्रदीप, संप्रदाय कल्पद्रुम, वल्लभ दिग्विजय)

1488 A.D. :- मात्र 2 वर्षोंके अल्प समयमें श्रीवल्लभ द्वारा समस्त अध्ययन पूर्ण करना जिसे देख श्रीवल्लभके शिक्षा गुरुओं द्वारा आपश्रीको बालसरस्वती व वाक्पतिकी उपाधि प्रदानकी गई.

अध्ययन पूर्ण होने पर माधवेंद्र पुरी द्वारा गुरु दक्षिणामें श्रीवल्लभसे श्रीनाथजीकी सेवा मांगना एवं आश्वस्त होने पर भारत-यात्रा हेतु प्रस्थान करना **

मकर-संक्रांतिके दिन काशीमें पिता श्रीलक्ष्मण भट्टका लीलाप्रवेश.

(श्रीनाथजीकी प्राकट्य वार्ता, वल्लभ दिग्विजय, प्राचीन निजवार्ता)

** श्रीनाथजीकी प्राकट्य वार्तामें आता यह उल्लेख वृंदावन दास द्वारा रचित चैतन्य भागवतसे भी साम्य रखता है. चैतन्य भागवतके अनुसार ईस्वी सन् 1491 में गृह त्याग करने के पश्चात नित्यानंद प्रभुकी दक्षिण भारतके किसी स्थान पर माधवेन्द्र पुरीजीसे भेंट हुई जो कि उस समय भारत यात्रा कर रहे थे. चैतन्य भागवतमें इस भेंटका विस्तृत वर्णन है जिसके पश्चात माधवेन्द्र पुरी सरयूकी ओर गए. अर्थात इस समय माधवेन्द्र पुरीजी श्रीनाथजीकी सेवामें पहुंचे ही नहीं थे. इससे यह सिद्ध होता कि

श्रीनाथजीका प्राकट्य स्वत: ही 1478ईस्वी में हुआ व श्रीमाधवेन्द्रपुरी द्वारा नहीं किया गया एवं महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य द्वारा गुरु दक्षिणाके रूपमें श्रीनाथजीकी सेवा माधवेन्द्रपुरीजीको 1519 ई में ही प्रदान की गई थी.

<u>1489 A.D.(jan -march) :</u>- श्रीवल्लभके अग्रज श्रीरामकृष्ण भट्ट द्वारा पिताका वार्षिक श्राद्ध संपन्न करना तथा छोटे भ्राता केशवका चौल कर्म होनेके पश्चात गयाजी हेतु परिवार सहित प्रस्थान.

गया श्राद्धके पश्चात गंगा सागर, एवं जगन्नाथ पुरीके मार्गसे कांकरवाड़की ओर प्रस्थान.

जगन्नाथ पुरीमें फलाहारी मठमें निवास तथा श्रीमंदिर पहुंचने पर एकादशीका दिवस होनेके कारण, हस्तमें प्राप्त महाप्रसाद लिए हुए ही मंडपकी दीवार पर हस्त टिका, श्रीवल्लभ द्वारा अनवरत श्रीजगन्नाथ तथा महाप्रसादकी महिमाका गान व द्वादशी सूर्योदय पश्चात प्रसाद ग्रहण करना.

गजपति पुरूषोत्तमदेवकी सभामें शांकर मतानुयायि ब्राह्मणों तथा वैष्णवोंके मध्य होते शास्त्रार्थमें श्रीवल्लभकी विजय, तथा स्वयं श्रीजगन्नाथ द्वारा श्लोक लिख कर श्रीवल्लभके पक्षमें निर्णय देना. पुरी दिग्विजयकी इस घटनाके पश्चात महाप्रभु श्रीजगन्नाथ तथा श्रीवल्लभको अभिन्न जान श्रीवल्लभकी “महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य” नामसे प्रसिद्धि हुई. इस शास्त्रार्थ का वर्णन स्वयं श्रीवल्लभ द्वारा तत्त्वार्थ दीप निबंधमें तथा श्रीगोपीनाथजी द्वारा पुरीमें लिखित वृत्तिपत्रमें संवत् सहित किया गया है (चित्र-3).

तत्पश्चात श्रीवल्लभ द्वारा कृष्ण सेवक गुच्छिकारको तीर्थ पुरोहितके रूपमें इसी समय वृत्ति पत्र प्रदान किया गया जिसमें भी संवत् दृष्टव्य है. (चित्र 1 व चित्र 2).

(प्राचिन निज वार्ता, तत्त्वार्थ दीप निबंध, वल्लभ दिग्विजय, तथा गोपीनाथ जी द्वारा हस्तलिखित वृत्तिपत्र जिसमें संवत सहित घटनाका उल्लेख है)**

**श्री गोपीनाथ जी द्वारा हस्तलिखित वृत्तिपत्र इस प्रकार है

<u>श्रीगोपीजनवल्लभो जयति</u>

एकं शास्त्रं देवकी पुत्रगीतमेको देवो देवकीपुत्र एव ।

मन्त्रोऽप्येकस्तस्य नामानियानि, कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा ॥१॥

इति श्रीजगदीशेन महाप्रभु कृते स्वयम् ।

लिखितं पद्यमेतद्धि मायावाद निवृत्तये ॥२॥

बहिर्मुखा यदा नैव मेने विद्वज्जनातिगः ।

पत्रं निरूप्यतां भूयः प्राहैनं कृष्ण सेवकः ॥३॥

तदा श्रीवल्लभाः प्रोचुर्वयं नाग्रहवादिनः ।

त्वन्यः पुरोहितः साक्षी यथेच्छसि तथा कुरु ॥४॥

गुच्छिकारस्तदा तस्य प्रत्ययार्थ हरेः पुरः ।

पत्रं संस्थापयामास मसी पात्रं च लेखनीम् ।।५।।

'यः पुमान् पितरं द्वेष्टि तं विद्यादन्य रेतसम् ।

यः पुमानीश्वरं द्वेष्टि तं विद्यादन्त्यजोद्भवम्' ।।६।।

भूयोऽपि जगदीशेन पत्रे विलिखितं त्विदम् ।

तदा बहिर्मुखो ध्वस्तस्तथा-ज्ञातश्च सज्जनैः ।।७।।

इति श्रुत्वैव सद्वार्तां कृष्णसेवकपण्डितम् ।

श्रीवल्लभात्मजो-गोपीनाथो मन्ये-तथाह्यमुम् ।।८।।

रव रस श्रुति भू (१४६०) संख्ये भासमाने शकेश्वरात् ।

लिखितं माधवामायां पूर्वेषां समतं दलम् ।।९।।

आन्ध्र देशीय दीक्षित वल्लभाचार्येण स्वपूर्व पुरुष सोमयाजि गंगाधर दीक्षितादीनां सम्मानितः श्रीमत्पुरुषोत्तमक्षेत्रे श्रीजगन्नाथ सपर्यां कुशलः गुच्छिकारः कृष्ण सेवाख्यः सेवा पण्डितः सोमयाजि गंगाधरदीक्षिता दीनां स्वपूर्व पुरुषाणां सम्मानितः इति स्वकीयरवधार्य विष्णु पदेन्दु श्रुतिधरा शके (१४१०) समागतेन वल्लभदीक्षितेन वृत्तिदलं निरूपितं, श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु वंशसंभूतैः कृष्ण सेवक वंशीयाः सम्मान्याः लिखितं दलमिदं रव रस श्रुति भू मिते (१४६०) शालिवाहन शके वैशाख कृष्णामादिने।

1489 A.D.(march-april) :- पुरीसे विजयवाड़ा, मंगलगिरी होते हुए वसंत डोलोत्सव तक कांकरवाड़ आगमन तथा श्रीवल्लभ द्वारा बुआके पुत्र शंभु भट्टको गोपालमंत्र दीक्षा देना.

माता इल्लम्मागारूसे श्रीवल्लभ द्वारा यात्राकी अनुमति लेना तथा चाचा श्रीजनार्दन भट्टसे यात्रार्थ निम्न भगवत्स्वरूप प्राप्त करना

अनंतशयनम् शालिग्राम: नंदराय जी द्वारा सेवित तथा स्वयं भगवान कृष्णके मुखसे स्पर्शित. शांडिल्य मुनि तथा विष्णुस्वामीसे होते हुए परमपरासे प्राप्त थे. (वर्तमान मथुराधीश प्रभुके साथ विराजित)

अनंतशेष शालिग्राम: छोटे व छिद्रयुक्त होनेके कारण इन्हें श्रीवल्लभने कण्ठमें धारण किया. इन्हें श्रीवल्लभने सभी यात्राओंमें अपने साथ ही पधराया (वर्तमान षष्ठ पीठ काशी)

मुकुंदरायजी : विष्णुस्वामी संप्रदायाचार्य श्रीगोविंदाचार्य द्वारा यज्ञनारायण भट्टके पिता वल्लभ भट्टको प्रदत्त(वर्तमान षष्ठ पीठ काशी) इन्हें भी श्रीवल्लभने सभी यात्राओंमें अपने साथ ही पधराया.(चित्र 4)

बालकृष्ण जी: विष्णुस्वामी संप्रदायाचार्य श्रीविष्णु मुनि द्वारा यज्ञनारायण भट्टजीको गोपालमंत्र दीक्षाके पश्चात प्रदत्त. इन्हें श्रीवल्लभने सेवा हेतु माताके पास पधराया (वर्तमान नाथद्वारामें श्रीनाथजीके साथ सेवित).

मदनमोहनजी: यज्ञनारायण भट्टजी द्वारा किए गए सोमयज्ञके कुंडसे स्वत: प्रकट स्वरुप. इन्हें श्रीवल्लभने सेवा हेतु माताके पास पधराया. (वर्तमान सप्तम पीठ कामवन- चित्र 5)

श्रीमद्भागवत: गंगाधराचार्यसे परंपरा द्वारा प्राप्त. इन्हें भी श्रीवल्लभने सभी यात्राओंमें पारायण हेतु अपने साथ ही पधराया.

उपरोक्त स्वरूपों सहित श्रीवल्लभ द्वारा माता सहित यात्रा प्रारम्भ तथा सर्वप्रथम कुलदेव श्रीतिरुपति बालाजीके दर्शन हेतु श्रीकालहस्तीके मार्ग से परिवार सहित प्रस्थान तथा चैत्र कृष्ण नवमी (april 1489)को बालाजीके दर्शन. (इल्लम्मागारू जी द्वारा स्वप्नमें लक्ष्मण भट्टजीको बालाजीमें समाहित होते देखना)

(वल्लभ दिग्विजय)

1489 AD :- तिरुपति बालाजीसे श्रीवल्लभका अपने मामाके घर विजयनगरकी ओर प्रस्थान. माताको मामाके घर छोड़ प्रथम भारत यात्राका प्रारंभ.

मार्गमें वर्धा नगरमें दामोदरदास हरसानीजी श्रीवल्लभके प्रथम सेवक हुए

(वल्लभ दिग्विजय, प्राचीन निज वार्ता, 84 वैष्णव वार्ता)

1490 AD :- श्रीवल्लभका महिष्मति होते हुए उज्जैन पधारना तथा नरोत्तम मिश्रा नामक ब्राह्मणको तीर्थ पुरोहितके रूपमें वृत्तिपत्र प्रदान करना (चैत्र शुक्ल प्रतिपदा,22 march -चित्र 6).

उज्जैनमें शैव ब्राह्मणोंको शास्त्रार्थमें पराजित करना तथा उनके मुखसे घट सरस्वतीकी सिद्धि तथा पांडित्यके बारेमें सुन, ओरछा हेतु प्रस्थान.

ओरछा शास्त्रार्थ: घट सरस्वतीको शास्त्रार्थमें पराजित कर श्रीवल्लभ द्वारा साकार ब्रह्मवादका स्थापन तथा राजा द्वारा कनकाभिषेक. इसका वर्णन वार्ता साहित्य (प्राचीन निज वार्ता तथा वल्लभ दिग्विजय) एवं ओरछा राज्यके ग्रंथ प्रतापवंशार्णवमें

भी प्राप्त होता है.

रामभद्रो यदा राजा राजते वै स्वपत्तने ।
तदा श्रीवल्लभाचार्य कृपया तु समागतः ॥२७॥
परिक्रमाया ब्याजेन वैष्णवैः सह संगतः ।
मायावादनिराकर्ता भक्तिमार्ग प्रवर्त्तकः ॥२६॥
जगद्‌गुरुः समुद्धर्ता जगती गतिदायकः ।
श्रीकृष्णस्यावतारस्तु मुखाधिष्ठातृ पावकः ॥२७॥
स्वसीमान्तं समागत्य राज्ञा सम्पूजितो मुदा ।
विनयावनतेनैव स्वसभायां प्रवेशित ॥२८॥
स्मार्तानां वैष्णवानां च यत्र वादः पूरा भवत् ।
श्रुत्वा प्रसंगामाचार्ये रुक्तं कोऽयं विवादकः ॥२९॥
नृपेणोक्त विवादेत्र स्मार्तानां दृश्यते जयः ।
विवादावसरे स्मार्तेः सभायां स्थाप्यते घटः ॥३०॥
उच्यते चेदमत्रास्ति घटे देवी सरस्वती ।
सत्यं वदेदियं यत्तु मार्ग सत्य एव हि ॥३१॥
घटे शब्दो हि भवति स्मार्तानां मार्गवाचकः ।
अतो भवन्ति जेतारः स्मार्ता भक्ताः पराजिता ॥३२॥
श्रुत्वेदमुक्त माचार्ये विवदन्तु मया सह ।
कृते विवादयाचार्यै र्युक्ताभिस्ते पराजिताः ॥३३॥
घटाच्छब्दोपि नो जातः कुद्धाजध्नुश्चं ते घटम् ।
देवीमूचुस्त्वयास्माकं पन्थानो रक्षकः कथम् ॥३४॥

सभायामपमानश्च मुखध्वंसश्च नः कृतः ।

देव्योक्तमिति रे मूर्खापत्यग्रे हं कथं व्रुवे ॥३५॥

प्राकृतः कोपि चेन्मर्त्यस्तदग्रे कथनं भवेत् ।

दासी कोट्यो मत्सदृशाः येषां पादः पुरस्थिताः ॥३६॥

लज्जां विहाय पत्यग्रे ह्ययोग्यं भाषणं स्त्रियः ।

एवं पराजिताः स्मार्ताः वैष्णवा जयकाशिनः ॥३७॥

तदा प्रसन्नं राजानमाचार्य इदमूचिवान् ।

सत्योहि वैष्णवे मार्गः सस्यात् श्रीकृष्णभाषितः ॥३८॥

एतस्य खंडिनः शाक्ताः कथं जेष्यन्ति मे पुरः ।

वैष्णवः श्रीप्रभोरंगो भेदोह्यंगांगिनोः कथम् ॥३९॥

प्रसन्नेन तदाराज्ञा सुवर्णेनाभिषेचितः ।

वैष्णवैर्बाह्मणैः सर्वैस्तिलकादिभिरर्चितः ॥४०॥

(प्रतापवंशार्णव,वल्लभ दिग्विजय, प्राचीन निज वार्ता)

1492A.D. feb-march फाल्गुन शुक्ल एकादशी :- कनकाभिषेकमें प्राप्त भेंट-द्रव्य आदिसे पिता श्रीलक्ष्मणभट्टका ऋण चुकाने तथा अपने परिवार जनों व ब्राह्मणों आदिमें वितरित करने श्रीवल्लभका ओरछासे वाराणसी पधारना तथा वहांसे भारत परिक्रमा जारी रखते हुए जगन्नाथपुरीकी ओर प्रस्थान. वाराणसीसे पुरीके मार्गमें श्रीनाथजी द्वारा झारखंडमें श्रीमहाप्रभुजीको स्वप्नमें शीघ्र व्रज पधारने व अपनी सेवा प्रकट करनेकी आज्ञा देना.

(श्रीनाथजी प्राकट्य वार्ता)

1492A.D. july-august श्रावण शुक्ल तृतीया :- श्रीमद् गोकुलमें श्रीमहाप्रभुजीको यमुनाजी द्वारा देवी रूपमें प्रत्यक्ष दर्शन देना व श्रीगोकुलकी भौगोलिक स्थितिका ज्ञान कराना तथा श्रीमहाप्रभुजी द्वारा यमुनाष्टक रचनाकर श्रीयमुना महारानीकी स्तुति करना.

(वल्लभ दिग्विजय, प्राचीन निज वार्ता,)

1492A.D. july-august श्रावण शुक्ल एकादशी :- गोकुलमें भागवत पारायणके पश्चात अर्ध रात्रिके समय श्रीमहाप्रभुजीको भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन देना तथा श्रीकृष्णाष्टाक्षर सहित ब्रह्मसंबंधमंत्र (अष्टाक्षर मंत्र सहित आत्मनिवेदन गद्य मंत्र) प्रदान कर जीवोंके उद्धारकी प्रतिज्ञा करना एवं श्रीमहाप्रभुजी द्वारा मधुराष्टककी रचना कर भगवान् की स्तुति करना तथा पवित्रा समर्पित कर मिश्रीभोग अर्पित करना.

पवित्रा द्वादशीके दिन दामोदरदास हरसानीजीको प्रथम ब्रह्म संबंध मंत्र दीक्षा देना तथा सिद्धांत रहस्य ग्रंथकी रचना करना. गोकुलमें साक्षात श्रीकृष्ण द्वारा प्रदत्त ब्रह्मसंबंध दीक्षाका उल्लेख 1511ईस्वी में बद्रीनाथके तीर्थ पुरोहितको लिखित श्रीरामकृष्णभट्टजीके लेखपत्रमें भी प्राप्त होता है.

(वल्लभ दिग्विजय, प्राचीन निज वार्ता,84 वैष्णव वार्ता,श्रीनाथजीकी प्राकट्य वार्ता)

1492A.D. july-august श्रावण शुक्ल त्रयोदशी :-

महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्यजीका आन्योर आगमन. सद्दू पांडे, मानिकचंद आदि व्रजवासियोंको अष्टाक्षर व ब्रह्मसंबंध मंत्र दीक्षा दे शिष्य करना तथा श्रीनाथजीकी सेवा रामदास चौहानको सौंपना. (इस समय महाप्रभुजीके संग दामोदरदास हरसानी, कृष्णदास मेघन, बड़े रामदासजी, माधवदास व नारायणदासजी थे. कुंभन दासजी सहित अन्य कई व्रजवासी भी महाप्रभुजीके शिष्य हुए. संवत 1549 श्रावन सुदी तेरसको, अर्थात ब्रह्मसंबंधकी आज्ञाके तीसरे दिन, रामदास चौहानको श्रीजीकी सेवा आचार्यजीने सौंपी. तब श्रीआचार्यजीने प्रभुका नाम गोवर्धननाथ रखा. उसके पूर्व सभी व्रजवासी उन्हें देव- दमन कहते थे. श्रीनाथजीको पाट बैठा श्रीमद् वल्लभाचार्यजी

व्रजयात्र हेतु आगे पधारे.)

(वल्लभ दिग्विजय, प्राचीन निज वार्ता,84 वैष्णव वार्ता,श्रीनाथजीकी प्राकट्य वार्ता)

1493 ई. :- व्रज यात्रा पूर्ण कर श्रीमहाप्रभुजी द्वारा मथुरामें उजागर चौबेजीको वृत्ति पत्र प्रदान करना. श्रीमहाप्रभुजी द्वारा स्वहस्ताक्षरोंमें संवत् सहित लिखित यह वृत्ति पत्र (चित्र 7) वार्ता साहित्य यथा श्रीनाथजीकी प्राकट्य वार्ता तथा प्राचीन निज वार्ताके उक्त अंशके प्रसंगोंको सत्य सिद्ध करता है.

यह व्रज यात्रा श्रीवल्लभ द्वारा की गई प्रथम व्रज मंडल परिक्रमा थी. इस परिक्रमामें श्रीवल्लभने व्रजके लुप्तप्राय हो चुके लीला स्थलोंको पुनः प्रकट किया तथा उक्त स्थानों पर भागवत पाठ भी किया. इन सभी स्थलों पर श्रीवल्लभकी बैठकें आज भी दृष्टव्य हैं. श्रीवल्लभ द्वारा प्रकटित लीला स्थल निम्न है:

श्रीमद् गोकुल: श्रीवल्लभको गोकुलकी स्थितीका ज्ञान स्वयं श्रीयमुना महारानीने देवी रूपमें प्रकट होकर कराया था. यहीं स्वयं श्रीकृष्णने प्रकट होकर श्रीवल्लभको गद्य मंत्र दीक्षा प्रदान करी थी.

श्रीवृंदावनधाम-वंशीवट: इस स्थान पर श्रीवल्लभने भागवत पर पारायण कर प्रभुदास जलोटाजीको वृंदावनके प्रत्येक वृक्षके प्रत्येक पत्रमें भगवत स्वरूपके दर्शन कराए तथा वृंदावन धामका अलौकिक स्वरूप प्रकट किया.

विश्रामघाट-श्रीमथुराजी: महमूद गजनवी, मोहम्मद गौरी तथा दिल्ली सल्तनतके सुल्तानों द्वारा किए गए विध्वंसके कारण मथुरा नगरी उजड़ चुकी थी, विश्राम घाट मात्र एक श्मशानघाटके रूपमें परिवर्तित हो चुका था तथा यमुना किनारेका संपूर्ण घाट क्षेत्र वन आच्छादित हो चुका था. यह देख श्रीवल्लभने वेद मंत्र पढ़कर अपना कमंडल श्रीकृष्णदास मेघनको दिया तथा आज्ञा की "जो जितनेमें यह जल छिरक्योजायगो तितनेमें बस्ती होयगी". यह सुन श्रीकृष्णदास मेघनजीने असकुंडाघाटसे सूर्यघाट तक वह अभिमंत्रित जल छिड़का और इस प्रकार मधुपुरीका उक्त क्षेत्र तीर्थ रूपमें पुनः प्रकट हुआ. जिस मार्गसे श्रीकृष्णदासजी आगे बढ़े वह मार्ग घाटके किनारे

स्थित “श्रीवल्लभाचार्य मार्ग”के नामसे जाना जाता है.

माधवकुंड कृष्णकुंड, मधुवन: कुंडके तट पर श्रीवल्लभ विराजे तथा भागवत पारायण किया तथा यहांका पौराणिक महत्व (गोचारण लीला स्थल) लोकमें प्रचलित किया.

कमोद कमोदिनी कुंड, कमोदवन: कुंडके तट पर श्याम तमाल वृक्ष के नीचे श्रीवल्लभ ने भागवत पारायण किया . यात्रा में श्रीवल्लभने बलभद्र कुंडमें स्नान कर तालवनकी भी परिक्रमा करी तथा शांतनुकुंड एवं गंधर्वकुंड प्रकट कर स्नान आदि किया.

कृष्णकुंड ,बहुलावन: कृष्ण कुंडके तट पर श्रीवल्लभ विराजे तथा तीन दिवस तक भागवत पारायण किया तथा हाकिम द्वारा बंद करवाई गई बहुला गऊ की पूजा को पुनः अलौकिक सामर्थ्य दिखा प्रारंभ किया.

राधाकृष्ण कुंड: यहां श्रीवल्लभने स्वामिनीजी द्वारा अपने नखसे खोदे गए राधाकुंड , तथा श्रीठाकुरजी द्वारा अपनी वेणुसे खोदे गए कृष्णकुंडको प्रकट किया तथा तट पर विद्यमान छौंकरके वृक्षके नीचे भागवत पारायण किया. राधाकुंडके चारों ओर स्थित अष्टसखियोंके कुंडों चंद्रभागाकुंड, चंपकलताकुंड, चंद्रावलीकुंड, ललिताकुंड, विशाखाकुंड, बहुलाकुंड, संध्यावलीकुंड, चित्राकुंडको प्रकट कर स्नान आदि किया. तत्पश्चात कुसुम सरोवर, नारदकुंड तथा ग्वालपोखरको भी प्रकट किया.

मानसीगंगा: मानसी गंगाके तट पर स्थित चक्रतीर्थमें श्रीवल्लभने विराज कर भागवत पारायण किया. यहां एक मास तक श्रीवल्लभ विराजे तथा श्रीगोवर्धनमें ब्रह्मकुंड, रिणमोचन, पापमोचन, धर्मरोचन, गोरोचन, निवर्तकुंड प्रकट किए.

आदिवृंदावन, पारसोली: यहां श्रीवल्लभने रास स्थली प्रकट कर चन्द्रसरोवरके निकट भागवत पारायण किया. तत्पश्चात पैंठा गांवमें लक्ष्मी कूप भी प्रकट किया.

श्रीनाथजीका प्राकट्य,आन्यौर, सदुपांडेजीका घर: यहां श्रीवल्लभका श्रीनाथजीसे प्रथम मिलाप हुआ तथा श्रीवल्लभने पर्वत ऊपर छोटा मंदिर बनवा

श्रीनाथजीकी सेवा रीति प्रकट कर पाट बैठाया.

गोविंद कुंड: यहां श्रीवल्लभने गोविंदकुंडके तट पर भागवतका पारायण किया तथा कृष्णप्रेमामृत ग्रंथको प्रकट किया. तत्पश्चात गंधर्वकुंड,संघनकंदरा, अप्सरा कुंड, ऐरावत कुंड ,कदमखंडीको भी प्रकट किया.

सुंदरशिला -दंडौती शिला: यहां श्रीवल्लभने सुंदरशिला -दंडौती शिलाका महत्व प्रकट किया तथा भागवत पारायण भी किया.

श्रीनाथजीका मंदिर: प्रथम ब्रजमंडल परिक्रमा के समय श्री वल्लभ ने श्रीनाथजी का छोटा सा मंदिर सिद्ध करवाया तथा मंदिरके दक्षिणी ओर विराज कर भागवत पारायण भी किया. कालांतरमें पूरणमल क्षत्रियके द्वारा बड़ा मंदिर निर्मित होने पर यह स्थल भी मंदिरके अंदर ही आ गया. तत्पश्चात श्रीवल्लभने गुलालकुंड, श्रीदामा सखाका गांव परमदरा, आदिबद्री तथा इंद्रकूप भी प्रकट किया.

सुरभी कुंड (श्रीकुंड) कामवन: यहां श्रीवल्लभने सुरभी कुंडका स्थान प्रकट कर छोंकरके वृक्षके नीचे भागवत पारायण किया तथा चौरासी कुंड प्रकट कर स्नान किया. तत्पश्चात श्रीवल्लभने कदमखंडी, चित्र विचित्र ,ऊंचा गांव, भानोखरी (भानुखोर)आदि का स्थान प्रकट कर इनका महत्व लोक प्रसिद्ध किया.

गहवर वन, बरसाना: यहां श्रीवल्लभने गहवर वनका प्राचीन स्थल प्रकट किया तथा भागवत पारायण किया. तत्पश्चात श्रीवल्लभने पीलीपोखर (प्रियाकुंड)को भी प्रकट किया.

प्रेमसरोवर बरसाना: यहां श्रीवल्लभने प्रेमसरोवर प्रकट कर स्नानादि किया तथा तट पर स्थित एक वृक्षके नीचे भागवत पारायण किया.

संकेत वट: यहां श्रीवल्लभने संकेत वट तथा कृष्णकुंडको प्रकट कर छौंकरके वृक्षके नीचे भागवत पारायण किया.

नंद छोंकर, नंदगांव: यहां श्रीवल्लभने पानसरोवर प्रकट कर नंदछोंकरके नीचे भागवत पारायण किया. तथा इस छोंकरके वृक्षका महत्व भी, नंदरायजीके दशहरा

पूजन स्थलके रूपमें, प्रकट किया.

करहला: यहां भी ललितकुंड(कृष्ण कुंड)के तट पर विराज कर श्रीवल्लभने भागवत पारायण किया, तथा इस स्थानका माहात्म्य (श्रीकृष्णको महारासके लिए कंकण-कलावा बांधा जाना) लोकमें प्रकट किया. तत्पश्चात श्रीवल्लभ अंजनोखरि(कृष्ण द्वारा स्वामिनी जी को अंजन धरने का स्थान), पिसायो(श्रीकृष्ण की जल पिपासा शांत करने हेतु स्वामिनी द्वारा जल अरोगानेका स्थल), खिद्रवन(कत्थे के वृक्षों का वन जहां बकासुर का वध हुआ) ,जावट (श्रीकृष्ण द्वारा स्वामिनीजीको जावट व अन्य श्रृंगार धरानेका स्थल) आदि स्थानों को प्रकट कर उनका माहात्म्य लोक प्रचलित किया.

कोकिलावन: यहां श्रीवल्लभने कृष्णकुंड (रत्नाकर कुंड)के तट पर छोंकरके वृक्षके नीचे श्रीमद् भागवतका पारायण किया तथा इस स्थलका महत्व लोकमें प्रकट किया (श्रीस्वामिनीजीके मान तथा गोपीगीतके गायनके स्थलके रूपमें). इसी स्थल पर श्रीवल्लभने निंबार्क संप्रदायके साधु चतुरानागाको अन्य कई साधुओं सहित खीरका महाप्रसाद अरोगाया. तत्पश्चात श्रीवल्लभ बड़ी बठैन(गायों एवं सखाओं सहित दाऊजी के विराजने का स्थान), छोटी बठैन (गायों एवं सखाओं सहित श्रीकृष्णके विराजनेका स्थान)का भी माहात्म्य प्रकट कर लोक प्रसिद्ध किया.

कोटवन: यहां शीतलकुंडके तट पर छोंकरके वृक्षके नीचे श्रीवल्लभने भागवत पारायण किया तथा इस स्थलका महात्म्य लोक प्रसिद्ध किया. तत्पश्चात श्रीवल्लभने शेषशायी(श्रीकृष्ण द्वारा शेषशायीके रूपमें दर्शन देनेका स्थल), रामघाट(बलरामजीकी रासस्थली), गोपीघाट गुंजा वन (गोपीजनों द्वारा गुंजा माला श्रीकृष्णको धरानेका स्थल), निवारनवनका महत्व भी प्रकट कर लोक प्रसिद्ध किया.

चीरघाट: यहां भी श्रीवल्लभने भागवत पारायण कर इस स्थलका पौराणिकमहत्व लोक प्रसिद्ध किया. तत्पश्चात नांदघाटका माहात्म्यभी (नंदरायजीको वरुणदूतोंसे छुड़ानेका स्थल)श्री वल्लभने लोक प्रसिद्ध किया.

बच्छवन: यहां पहाड़ीके ऊपर छोंकर वृक्षके नीचे श्रीवल्लभने विराज कर भागवत पारायण किया तथा इस स्थलका माहात्म्य (ब्रह्मा विमोहन लीलाका स्थल)

लोक प्रसिद्ध किया.

भांडीरवन: इस स्थल पर श्रीवल्लभने भागवत पारायण कर यहांका पौराणिक महत्व (श्रीकृष्ण तथा स्वामिनीजीकी विवाह स्थली तथा वात्ससुरके वधके कारण गोपिकाओं द्वारा आरोपित पापसे निवृत्ति हेतु श्रीकृष्ण द्वारा वेणुसे खोदा गया भांडीरकूप अथवा वेणुकूपका स्थल) लोक प्रसिद्ध किया. तत्पश्चात श्रीवल्लभने वेलवन(गोप गोपियों द्वारा श्री कृष्ण एवं स्वामिनीजीके पुष्पोंसे श्रृंगार करनेका स्थल तथा लक्ष्मजी द्वारा तपस्याके फल स्वरुप रासलीलाके दर्शनका स्थल) तथा भद्रवन (बलभद्र तथा कृष्ण द्वारा सघन वृक्षोंकी छायामें मध्यान्हमें छाक अरोगनेका स्थल)का भी महत्व प्रकट कर लोक प्रसिद्धकिया.

मानसरोवर: इस स्थल पर भी श्रीवल्लभ ने भागवत पारायण कर यहां का पौराणिक महत्व (स्वामिनीजीकी मानस्थलीके रूपमें) प्रकट कर लोक में प्रचलित किया.

ब्रजके उपरोक्त सभी स्थानोंपर श्रीवल्लभकी बैठकें आज भी विद्यमान है जिनका विवरण पुष्टिमार्गीय साहित्यमें तो प्राप्त होता ही है साथ ही मथुराके चतुर्वेदी ब्राह्मण श्री उजागर चौबेके वंशजोंके यहां संग्रहित प्राचीन लेख पत्रों तथा ग्रंथोंसे भी सिद्ध होता है. इस विषय पर बालमुकुंद चतुर्वेदी अपने ग्रंथ माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मणों का इतिहास में लिखते हैं-"श्रीमहाप्रभुने मथुरा ब्रजमहात्म्य और यात्रा पद्धत का 'ब्रज मथुरा प्रकाश' नामका ग्रंथ भी रचा है जाते हमारे ही यहाँ हैं. उनकी 6 ब्रज यात्राओं में-1)-1550 वि. (1493ई.) ग्वालियर से पधारे तब, 2)-1555 वि. (1499ई.) में पुष्कर से पधारे तब, 3)-1571 वि. (1514ई.) अडैलसे पधारे तब, 4)-1573 वि. (1516ई.) पुन:, 5)-1585 वि. (1528ई.) द्वारिकापुरीसे पधारे तब और 6)-1586 वि. (1529ई) गोपलापुर (जतीपुरा) निवास करते तब इस प्रकार 6 ब्रज यात्राओं को सम्पन्न कर ब्रज रसकी सिद्धि करनेका महा मनोरथ वर्णित है. ब्रजके प्रमुख स्थलोंमें इनकी भागवत परायणकी 24 बैठकैं सर्व विदित हैं". उपरोक्त ऐतिहासिक प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि श्रीवल्लभ ब्रजयात्राका प्रारंभ कर ब्रजमंडलके तीर्थोंको पुनः प्रकाशमें लाने वाले

सर्वप्रथम आचार्य थे क्योंकि अन्य सभी आचार्यगण श्रीवल्लभके पश्चात ही व्रज पधारे हैं.

1493 ई. :- श्रीमहाप्रभुजी द्वारा पुष्कर राजमें बालबोध ग्रंथकी रचना.

(वल्लभ दिग्विजय, पुष्टिविधानम परिचय सहित)

1494 ई. :- महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य द्वारा बद्रिकाश्रममें नरहरि सन्यासीके लिए सन्यास निर्णय ग्रंथकी रचना.

(पुष्टिविधानम परिचय सहित)

1495 ई. :- महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा अपने सेवक पुरुषोत्तम जोशी हेतु भक्ति-वर्धिनी ग्रंथकी रचना

(पुष्टिविधानम परिचय सहित)

1497 ई.:- वैशाख शुक्ल तृतीया*: प्रथम भारत यात्रा 9 वर्षमें पूर्ण कर श्रीवल्लभका पुनः कंकरवाड़ आगमन. श्रीवल्लभने इसी भारत यात्राके समय द्वारिका पहुंचने पर, रुक्मिणी देवी द्वारा सेवित विग्रहको सावित्री वावसे प्रकट कर मंदिरमें स्थापित करा. कालान्तरमें (1551ईस्वी) रक्षा हेतु यह विग्रह बेट द्वारका ले जाया गया. (चित्र 9)

(वल्लभ दिग्विजय, *बंबईसे प्रकाशित निजवार्तामें वर्णित)

1498 ई. :- छः माह पश्चात द्वितीय भारत यात्राका कंकरवाड़से प्रारंभ. चैत्र शुक्ल द्वितीया, रविवारके दिन विद्या नगरसे प्रस्थान (1498)

(वल्लभ दिग्विजय)

1498 ई. :- श्रीमहाप्रभुजीका व्रज आगमन. जतीपुरामें अच्युतदास सनोढ़ियाके लिए सिद्धांत मुक्तावली ग्रंथकी रचना. **(पुष्टिविधानम परिचय सहित)**

1499 ई. :- वैशाख शुक्ल तृतीया श्रीमहाप्रभुजी द्वारा पूरणमल खत्रीको

ब्रह्मसंबंध दीक्षा तथा श्रीवल्लभकी आज्ञा प्राप्त कर पूरणमल खत्री द्वारा मंदिर निर्माण प्रारम्भ. (चित्र 10)

(श्रीनाथजीकी प्राकट्य वार्ता, 84 वैष्णव वार्ता)

1501 ई. :- अड़ैल ग्राममें महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य द्वारा नवरत्न ग्रंथकी रचना.

(पुष्टिविधानम परिचय सहित)

1502-1503 ई. :- द्वितीय भारत यात्रा 5 वर्षमें काशीमें पूर्ण. तथा कुछ माह पश्चात तृतीय भारत यात्रा प्रारम्भ.

(वल्लभ दिग्विजय)

1501-1503 ई. :- विजयनगरका प्रसिद्ध शास्त्रार्थ

****सोमनाथ कविने अपने ग्रंथ व्यासयोगीचरित (जिसकी रचना 1535ई. में हुई)में, ईस्वी सन् 1501से 1503के लगभग विजयनगरमें राजा नरसा नायकके राज्य कालके दौरान, राजसभामें हुए एक शास्त्रार्थका वर्णन किया है जो 30 दिनों तक चला था. इस शास्त्रार्थमें व्यासतीर्थजीके प्रतिद्वंदीके रूप बासव भट्ट नामक अद्वैत वादी शैव ब्राह्मणका उल्लेख किया गया है.(It has been said- para 14- that Sri Vyasaraya overcame his - opponents in a great assembly at Vijayanagar in King Narasa's time. The chief opponent was one Basava Bhatta from Kalinga. **"प्रवावदूकातातिरेकेण धिषणमपि तृणायमन्वानं बासवभट्टनामानं कंचन कालिंगमनीषिणं पुरस्कृत्य भगवता तेन तापसकेसरिणा सह विजिगीषया"**॥-p. 60 of the present work. After obtaining victory in the assembly, Sri Vyasaraya treated Basava Bhatta very well; and this made Basava Bhatta blush all the more. **"वैलक्ष्यमारचयतोपि कलिंगसूरे स्तस्य प्रदातृमणिनामुनिना वितीर्ण । मध्येनरेंद्रसभ मप्रतिभांगतस्य वैवर्ण्यमेव वपुषि प्रकटीबभूव"**॥ -p. 61 of the present work. It is believed that it is from this Basava Bhatta that Sri Vyasaraya Swami obtained the linga of Siva that is wor- shipped

on Mahasivaratri days in the Mutt to this day -see para 4- Vyasayogi charitam, introduction by B. Venkoba Rao).

शास्त्रार्थके अंतमें व्यासतीर्थजीके विजयी होनेका वर्णन है. नरसा नायक अपने राज्यकालके समय दक्षिणमें चौल विद्रोहियोंका दमन करने तथा अन्य युद्धोंमें अपने बड़े पुत्र वीरनृसिंहराय सहित अत्यधिक व्यस्त रहे थे जिस दौरान राजधानीका प्रभार छोटे पुत्र कृष्णदेव राय पर रहता था. प्रबल संभावना है उक्त शास्त्रार्थ कृष्णदेवरायके सम्मुख हुआ हो. ठीक इसी प्रकार वल्लभ संप्रदायके लगभग सभी इतिहास व चरित्र ग्रंथोंमें कृष्णदेवरायकी राजसभामें महाप्रभु श्रीमद् वल्लाभाचार्यका 30 दिनों तक चले शास्त्रार्थके अंतमें विजयी होने तथा कृष्णदेवराय द्वारा तुलापुरुषदान करानेका वर्णन प्राप्त होता है. संभवतः तुलापुरुषदानके अंतर्गत सुवर्ण सिंचित जलसे अभिषिंचन ही बादमें कनकाभिषेकके नामसे सम्प्रदायमें प्रचलित हो गया. कृष्णदेव रायकी सभामें हुए शास्त्रार्थका वर्णन संप्रदाय प्रदीप, 84 वैष्णव वार्ता, प्राचीन निज वार्ता, वल्लभ दिग्विजय आदिमें दृष्टव्य है.

1503 ईस्वी :- श्रीमथुराधीशप्रभुका करणावल ग्राममें, फाल्गुन शुक्ल एकादशी संवत 1559 विक्रमीके दिन संध्या समय प्राकट्य (चित्र 11).

(मथुराधीशप्रभुकी प्राकट्य वार्ता)

1504 ई. :- श्रीमहाप्रभुजीका देवनभट्टकी कन्या महालक्ष्मीजीके साथ विवाह(मदाला पंजिका एवं वल्लभ दिग्विजयके अनुसार 1504 ई.). विवाह पश्चात पुनः भारत यात्राके लिए प्रस्थान.

(वल्लभ दिग्विजय, प्राचीन निज वार्ता, वल्लभाख्यान)

1509 ई. :- महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य द्वारा अपने सेवक राजा दुबे तथा माधव दुबे के लिए द्वारिकामें निरोध लक्षण ग्रंथकी रचना.

(पुष्टिविधानम परिचय सहित)

1509 ई. :- तृतीय भारत यात्रा काशीमें संपूर्ण तथा श्रीमहाप्रभुजीका द्विरागमन (अर्थात गौना हेतु ससुराल आना) तथा श्वसुर गृहमें पूजित श्रीगोकुलनाथप्रभु (चित्र 8)का श्रीवल्लभ संग पधारना एवं अड़ैल ग्रामका स्थाई निवास हेतु चुनाव.

(वल्लभदिग्विजय, प्राचीन निजवार्ता, संप्रदायकल्पद्रुम)

1510 ई. :- श्रीमहाप्रभुजी द्वारा सूरदासजी पर अनुग्रह कर ब्रह्मसंबंध दीक्षा देना तथा श्रीनाथजीके मंदिरमें कीर्तनकी सेवामें नियोजित करना.

(84 वैष्णववार्ता , वल्लभदिग्विजय, प्राचीन निजवार्ता एवं घरुवार्ता, प्राचीन अष्टसखानकी वार्ता, श्रीनाथजीकी प्राकट्य वार्ता)

1511 ई. :- महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यका अपने अग्रज श्रीरामकृष्ण भट्ट सहित बद्रीनाथ पधारना तथा तीर्थ पुरोहितके रूपमें वासुदेव तैलंगजीकोको वृत्ति पत्र प्रदान करना.

उक्त वृत्ति पत्र इस प्रकार है:

"श्रीबालकृष्णवात्सल्यनिष्ठानिमग्नमानस: श्रीवेदव्यास
विष्णुस्वामिमतानुवर्त्य: श्रीवल्लभाचार्य:॥"

(श्रीवल्लभाचार्यजीके उपरिलिखित हस्ताक्षर तेलगु लीपिमें हैं.)

श्रीवल्लभाचार्यके बड़े भाई श्रीरामकृष्ण भट्टजी द्वारा लिखित 11 श्लोकोंका वृत्तिपत्र यहाँ और भी महत्वपूर्ण हो जाता है.

इस वृत्तिपत्रमें श्रीरामकृष्ण भट्टजी द्वारा प्रत्यक्षरूपसे संवत (विक्रम संवत 1568 अर्थात ईस्वी सन् 1511)का उल्लेख इस पत्रको महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साक्ष्य सिद्ध करता है, जो कि अपने साथ वार्ता-साहित्य, वल्लभदिग्विजय आदिकी ऐतिहासिकता भी सिद्ध करता है. इससे सिद्ध होता है कि श्रीवल्लभ इस समय तक अर्थात ईस्वी सन् 1511 तक, पुष्टिमार्गका प्रारंभ कर "महाप्रभुवल्लभाचार्य"के नामसे

प्रसिद्ध हो चुके थे.

" गोभिर्वृतं प्रकृति-सुंदरमन्दहास -भासा समुल्लसित मञ्जुलवक्रबिम्बम्।
श्रीनन्दनन्दनमखण्डितमण्डलाभं बालार्यमश्रियमहं हृदि भावयामि ॥१॥

ग्रामे 'कांकरवाल" नाम्नि विमले देशे तथा दक्षिणे पञ्च द्राविडभूसुरान्वय-भवस्तैलंगजाति प्रथे:। भारद्वाजकुलैरलंकृतगुणापस्तम्ब-सूत्रैस्तथा गृह्यैराश्रित तैत्तिरीयविटपैर्य: सोमयज्ञ: कृत:॥२॥

यज्ञे यज्ञे यज्ञानारायणोऽस्मिन् साक्षाद्विष्णुर्विप्रवंशावतंस:।
तस्माल्लोके सोमयाजीति वाच्य: प्राचां रक्षन कीर्तिमार्तिं च धुन्वन्॥३॥

तस्मात् जात: सोमयाजी पदान्त: सिंधोश्चंद्र: श्रील गंगाधराख्य:।
तस्मान्मान्य: श्रीगणेशाभिधानस्तस्माच्छ्रीमान् वल्लभोऽजायतात्र॥४॥

ततोभवल्लक्ष्मणभट्टनामा महानुभावो विदुषाम् वरिष्ठ:।
श्रीवल्लभाचार्यवरस्ततोऽभून्नराकृतिर्ब्रह्मनिगूढ तत्त्व:॥५॥

तं वैष्णवं सलकसम्मत संप्रदायं यो वल्लभाह्वयतया वितनोतुमिच्छन्।
बाल्ये विहाय निजदेशमुदारवेश: श्रीमद्व्रजे स्वयमुवास स मन्दहास:॥६॥

वृन्दावनांतर-महीरुहराजिरम्यं श्रीगोकुलेन विमलेन च शोभमानम्।
आमन्द यामुन-तरंगसमीरणाढ्यं गोलोकतोऽधिकममंस्त च तं सुरार्च्यम्॥७॥

तत्र स्वयंवर-समागत हृद्य विद्या-विद्योतमान-विभवो भवतापहीन:।
श्रीगोकुले चिरकृतस्थितिरात्मसंस्थ: श्रीनन्दनन्दनमुपाचरदार्यभाव:॥८॥

विद्वद्भि: किलकृष्णदासकमुखै: शिष्यैरनेकैर्वृत:।

सोऽहं श्रीबदरीवनान्तमगम शुक्रे (ज्येष्ठ) शकाब्दे तथा देवाम्भ:पति भू १४३३ मिते सह नरं नारायण वीक्षितुं (१४३३+१३५=१५६८ सं.) तत्र "व्यासमुनीश" संगतिरभूदाकस्मिकी मे शुभा॥९॥

अत्र श्रीवासुदेवाख्यः पौरोहित्ये वृतो मया, तैलंग-वंश-संभूतः
स्वाध्यायाचारचंचुरः॥१०॥

श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभुणाम् नियोगतो बुद्धिमतां विभाव्यः।
श्रीरामकृष्णाभिधभट्ट एतं लेखं व्यतानीत्पुरतश्च तेषाम्॥११॥"

अर्थ: : "प्राकृतिक सौंदर्यसे घिरे हुए, मंदहाससे चमकते हुए सुंदर मुखके साथ श्रीनंदनंदन, जिनका अखंड मंडलाभ (तेज) है, मैं उनके बाल स्वरूपका ध्यान अपने हृदयमें करता हूँ।॥1॥

शुद्ध स्थान "कांकरवाल" नामक गाँवमें, दक्षिणमें पंचद्राविड क्षेत्रके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके वंशमें उत्पन्न, भारद्वाज गोत्रसे सुशोभित, गुणोंसे संपन्न और अपस्तम्ब सूत्र तथा तैत्तिरीय शाखा से जुड़े हुए, वहाँ सोमयज्ञ किया गया।॥2॥

"विप्र (ब्राह्मण) वंशके शिरोमणि यज्ञनारायणके उस यज्ञमें, स्वयं साक्षात विष्णु प्रकट हुए. इसलिए, उन्हें लोकमें सोमयाजी के रूप में कहा गया, जिसने पूर्वकी दिशामें कीर्ति और प्रतिष्ठा को बनाए रखा।॥3॥

उसी वंशमें सोमयाजी के पदाधिकारी, समुद्र जैसे विस्तारवाले और चंद्र समान दिव्य स्वरूप वाले श्रीलं गंगाधर नामक महापुरुष का जन्म हुआ. उन(गंगाधर) से महान गणेश नामक व्यक्तिका जन्म हुआ और उनसे महानुभाव वल्लभ उत्पन्न हुए।॥4॥

उनके बाद लक्ष्मण भट्ट नामक महानुभाव विद्वानोंमें श्रेष्ठ हुए. उनसे ही श्रीवल्लभाचार्य जैसे परमविद्वान प्रकट हुए, जो मानवरूपमें ब्रह्मके गूढ़ तत्वका अवतार है।॥5॥

वैष्णव सम्प्रदायका सकल शास्त्र-सम्मत स्वरूप लोकमें प्रसिद्ध करनेकी इच्छासे बाल्यकालमें ही अपने देशका त्याग करके उदार स्वरूप श्रीवल्लभने स्वयं श्रीमद् वृंदावनमें निवास किया. उनके मुख पर सदा एक मधुर मुस्कान बनी रहती थी. ॥6॥

वृंदावनका रमणीय वातावरण, पवित्र गोकुलकी शोभा और यमुनाकी मधुर

लहरोंकी शीतल वायुसे युक्त वह स्थान, जो गोलोकसे भी श्रेष्ठ माना गया और देवताओं द्वारा पूजनीय है।॥7॥

"वहाँ उस दिव्यस्थानमें, भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं श्रीवल्लभके सामने प्रकट हुए, तथा (ब्रह्मसंबंधके)ज्ञानसे हृदयको आलोकित करा जिससे समस्त संसार ताप/क्लेश/सांसारिक कष्टों से मुक्त हुआ. श्रीगोकुलमें चिरस्थाई रूपसे आत्मस्थ होकर, श्रीवल्लभने श्रीनंदनंदनकी आर्य-भावसे श्रद्धापूर्वक सेवा की." ।।8।।

(यहां प्रयुक्त "तापहीन" शब्द ब्रह्मसंबंधके गद्यमंत्रकी ओर ही इंगित करता है क्योंकि उक्त गद्यमंत्रमें ही श्रीकृष्णके वियोगसे उत्पन्न होनेवाले तापके शमनका सूचन है.)

विद्वानों द्वारा, विशेषकर श्रीकृष्णदास और अन्य कई शिष्यों द्वारा घिरे हुए, मैं स्वयं भी श्रीबदरीवन पहुंचा (ज्येष्ठ मास) शकाब्द 1433 में (1433+135=1568 वि.) नर-नारायणके दर्शनके उद्देश्यसे. वहाँ हमारी अकस्मात "व्यासमुनि" के साथ शुभ भेंट हुई।॥9॥

वहाँ पर श्रीवासुदेव, जो तैलंग वंशके थे, अपने स्वाध्याय और धर्माचारमें अत्यधिक निपुण थे, उन्हें मैंने अपने पुरोहितके रूपमें चुना।॥10॥

श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभुके आदेशसे बुद्धिमानोंके समक्ष श्रीरामकृष्ण नामक भट्टने इस लेखको प्रस्तुत किया।॥11॥"

1511 ई :- आश्विन कृष्ण द्वादशी: महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यके प्रथम पुत्र श्रीगोपीनाथ जीका अड़ैलमें प्राकट्य.

(वल्लभ दिग्विजय ,प्राचीन निज वार्ता, वल्लभाख्यान)

1512 ई :- . महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्यजीसे श्रीकृष्णचैतन्यकी अड़ैलमें भेंट.

"एकदा पूर्व गङ्गातीरे वसतः श्रीवल्लभस्य गृहे श्रीकृष्णचैतन्यैः समागतम्।

तमदृष्टपूर्वं दृष्ट्वा श्रीवल्लभेनोक्तम्- इमे कृष्णचैतन्याः, इत्युक्त्वा नमस्कृताः। तत्समये मध्याह्नभोगान्तरं भगवति शयनं गते सति स्वधर्मपत्नी श्रीवल्लभोऽब्रवीत् भोः! महाज्ञया त्वमस्मै सुपक्वमन्नं भोजय। पत्नी प्राह- अनिवेदितं कथं देयम्? तदा श्रीवल्लभेनोक्तम्- देयमेव, अस्य हृदयस्थः श्रीकृष्णो भोक्ष्यत्येव।”

अर्थ: एक दिन यात्रा करते हुए श्रीकृष्णचैतन्य सहसा गंगातट पर विराजमान श्रीवल्लभाचार्यजीके घर आये. अद्रष्टपूर्व एवं परिचय न होने पर भी श्रीवल्लभाचार्यजीने उन्हें पहचान अभ्युत्थानादि देकर उनका सत्कार किया. कृष्णचैतन्यको महाप्रसाद लिवानेके लिये श्रीवल्लभाचार्यजीने अपनी पत्नीको आज्ञा दी, पर वे राजभोगके उपरान्त अनवसर हो जाने एवं समस्त वैष्णवोंके महाप्रसाद ले चुकनेके कारण ऐसा न करपाने को विवश थी. अतः श्रीवल्लभाचार्यजीने परिस्थिति जानकर आज्ञा करी कि इनके हृदय मंदिरमें साक्षात् पूर्णपुरुषोत्तम कृष्णचंद्र विराजमान हैं- वह स्वीकार करेंगे - अतः असमर्पित भोजन-सामग्रीसे ही उनको महाप्रसाद लिवाकर विदा किया. (यह प्रसंग 1511-12 ईस्वीका श्रीचैतन्यकी प्रयाग यात्राके समयका माना जाता है)

- संप्रदायप्रदीप

तथा इसी वर्ष श्रीकृष्ण चैतन्यके व्रजमंडल प्रवासके समय महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्यजीका व्रज आगमन एवं गोविन्द कुंड के समीप गिरिराज शिला पर स्वामिनी श्रीराधा द्वारा उत्कीर्ण स्तोत्र कृष्ण प्रेमामृत प्रकट कर श्रीकृष्ण चैतन्यको प्रदान किया गया. - बैठक चरित्र

(संप्रदाय प्रदीप, बैठक चरित्र)

<u>1513</u> ई. :- महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्यजी द्वारा लाहौरके बूला मिश्रके लिए अड़ैल ग्राममें कृष्णाश्रय ग्रंथकी रचना.

(पुष्टिविधानम परिचय सहित)

<u>1514-1515</u> ई. :- विट्ठलनाथजीके जन्मसे पूर्व श्रीमहाप्रभुजी द्वारा सकुटुंब जगन्नाथ पुरीकी यात्रा.

(वल्लभ दिग्विजय, मदाला पंजिका)

1515 ई. :- पौष कृष्णा नवमी महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्यजीके द्वितीय पुत्र गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजीका चरणाद्रीमें (चुनारगढ़) प्राकट्य तथा प्रयागमें संगमसे प्रकट हुए रुक्मिणी सहित विट्ठलनाथप्रभुके स्वरुपका आगमन (चित्र 12).

वर्षे नेत्राश्वभूत द्विजपति (१५७२) गणिते पौषकृष्णे नवम्यां, हस्तर्क्षे
तैतिलेहन्यधिकृतभृगुजे शोभने गोविलग्ने,
रन्ध्रस्थेऽर्के सचान्द्रौ कविकुजशनिषु द्यूनगेष्वात्मजस्थे
सोमे जीवे धनस्थे तमसि सहजगे विट्ठलः प्रादुरासीत् ।।१।।
शुक्रारार्किषु सप्तमेषु धनगे जीवे च कर्के तम-
स्यर्के धन्विनि चान्द्रिणा सह सहस्याशुक्लपक्षे वृषे।
अब्दे नेत्रमुनीषु चन्द्रगणिते हस्ते नवम्यां भृगौ
विश्वोद्धारकृते स्फुटोऽभवदिह श्रीविठ्ठलेशो हरिः ।।२।।

सं. १५७२, शाके १४३७ पौषकृष्णे ९ शुक्रे हस्तनक्षत्रे शोभनयोगे तैतिलकरणे एवं पञ्चाङ्गे.

श्रीसूर्योदयात् गत घटी २१ पलानि २५ वृषलग्ने श्रीविठ्ठलनाथजी प्राकट्यम्।
स्थितिः वर्ष ७० दिन २८, सं. १६४२ माघकृष्णे ७ दिने अन्तर्धान।

-विट्ठलेश्वर जन्म पत्रिका

(वल्लभ दिग्विजय ,प्राचीन निज वार्ता,वल्लभाख्यान, संप्रदाय प्रदीप तथा संप्रदायकल्पद्रुम, विट्ठलेश्वर जन्म पत्रिका)

1518 ई. :- श्रीगोपीनाथजीका काशीमें यज्ञोपवीत तथा माधव सरस्वतीके पास विद्यार्जन. इसके पश्चात गंगासागर होते हुए महाप्रभुजीका पुनः सपरिकर जगन्नाथ पुरी पधारना तथा श्रीकृष्णचैतन्यसे भेंट. इस भेंट का वर्णन श्रीगोकुलनाथ द्वारा रचित प्राचीन निज वार्तामें तथा सन् 1553ई. में गदाधर द्विवेदी द्वारा लिखित संप्रदाय प्रदीपमें प्राप्त होता है. संप्रदाय प्रदीप वृंदावनमें रूप गोस्वामी द्वारा सेवित गोविंद देवजीके सम्मुख

लिखा गया ग्रंथ है अतः श्रीवल्लभके चरित्र वर्णनका एक प्रमाणिक ग्रंथ स्वीकारा जाता है जो इसकी कई प्राचीन हस्त लिखित प्रतियोंसे सिद्ध होता है. संप्रदाय प्रदीपका वर्णन इस प्रकार है:

“पुनरेकदा गोकुलात्प्रयागादिस्थलेष्वीश्वरेच्छया वसति कुर्वाणः श्रीवल्लभः साग्निहोत्रः श्रीपुरुषोत्तमायतनं जगाम। कालक्रमेण तत्र प्राप्तः। तत्रैको महाभक्तः कृष्णचैतन्यनामा। तस्य श्रीपुरुषोत्तमस्याज्ञा जाता। “मद्रूप श्रीवल्लभनामाऽत्रायातः, तं मदग्रे सद् बुद्धयार्चय”। इति जगन्नाथवाक्यत्तथैवाऽसौ कृतवान्।

अर्थ: एक बार श्रीवल्लभाचार्यजी गोकुलसे चलकर प्रयागादि स्थलोंकी यात्रा करते हुए श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र जगन्नाथपुरीमें पधारे. उस समय परमभागवत श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु वहीं निवास कर रहे थे. श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुको साक्षात श्रीजगन्नाथजीने आज्ञा करी “मेरे ही स्वरुप श्रीवल्लभका यहां आगमन हुआ है, उन्हें मेरे ही समान जान उनका अर्चन करना”. जिस प्रकार जगन्नाथजीकी आज्ञा हुई उसी प्रकार श्रीचैतन्यने श्रीवल्लभसे भेंट कर उनका अर्चन किया. “

एकदा श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रे श्रीवल्लभशिष्यान्प्रति कृष्णचैतन्यैरुक्तम्। भवद्भिः श्रीवल्लभे गुरुबुद्धिर्न कार्या, न वा पण्डितबुद्धिः न वैष्णवबुद्धिः, अयं तु साक्षाद्देवकीपुत्र एव। एवं तत्र बहुन्याश्चर्या जातानि ।

अर्थ: जगन्नाथपुरीमें एक समय श्रीकृष्णचैतन्यने वैष्णव-सेवकोंके प्रति आज्ञा करी कि श्रीवल्लभको मात्र गुरु ही नहीं जानना और न ही महापंडित मानना प्रत्युत वे तो साक्षात् देवकी-पुत्र हैं. इस प्रकार वहां बहुतसे आश्चर्य घटित हुए.

इसी प्रकार प्राचीन निजवार्तामें आता है:

“श्रीआचार्यजी महाप्रभुके दर्शन करिकें कृष्ण चैतन्य बहुत प्रसन्न भये और कहे जो महाराज मेरो बड़ो भाग्य है जो मैं महाराजके दर्शन पायो. तब श्रीकृष्णचैतन्य श्रीआचार्यजी महाप्रभुनके आगे भगवन्नामको महात्म्य कहे जो एक क्षण हु श्रीठाकुरजीके चरणार्विंदमें मन लगावे तो वह जीव कृतार्थ होई जाए. तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहे जो हमारो मार्ग तो ऐसो नाहीं है. हमारे मार्गमें तो क्षण एक हू जो श्रीठाकुरजीके

चरणार्विंदमें ते मन काढ़े तो आसुरावेश होय.

ताहि ते श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप नवरत्नमें कहे हैं:-

“तस्मात् सर्वात्मना नित्यम् श्रीकृष्ण: शरणम् मम.”

ऐसे जीवकों अहर्निश कहनो.

उपरोक्त प्रसंगोंमें 1518ई. में जगन्नाथपुरीमें हुई भेंटका वर्णन है. चैतन्य चरितामृतकी अंत्य लीलामें श्रीकृष्णचैतन्य तथा महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्यजीकी भेंटका वर्णन ऐतिहासिक साक्ष्यों एवं तथ्योंके विपरीत होने, साथ ही षड्गोस्वामीगणों, चैतन्य भागवत तथा श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्तीकी वाणीसे, एवं स्वयं महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य तथा गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी प्रभुचरणकी वाणीसे विपरीत होनेके कारण अप्रमाणिक सिद्ध होता है. संभवतः इस अंशको प्रक्षिप्तांशतया परवर्ती कालमें मूल ग्रंथमें जोड़ दिया गया.

(वल्लभ दिग्विजय ,प्राचीन निज वार्ता, संप्रदाय प्रदीप)

श्रीमहाप्रभुजी एवं मधुसूदन सरस्वती

वल्लभ संप्रदायमें प्रचलित एक अनुसूचीके अनुसार महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यके पुत्र श्रीगोपीनाथजी तथा द्वितीय पुत्र श्रीविट्ठलनाथजीको विद्याध्ययन मधुसूदन सरस्वतीजी द्वारा करवाया गया था. किंतु मधुसूदन सरस्वतीजीका उल्लेख प्राचीन निजवार्ता तथा घरूवार्ता एवं वल्लभ दिग्विजय ग्रंथमें प्राप्त नहीं होता. किंतु मुंबईसे प्रकाशित निजवार्तामें अवश्य मिलता है, जो 18वीं 19वीं शताब्दीके लगभग लिखी गई थी. संभवत: किन्हीं गोस्वामी बालक द्वारा निजवार्ताके प्रवचनके दौरान अनुश्रुत प्रसंग भी कथामें कहनेसे लिपिकों द्वारा इन्हें भी निजवार्ताके रूपमें लिपिबद्ध कर लिया गया जिस कारण यह ग्रंथ ही प्रशिक्षित हो गया. इस प्रक्षिप्त निजवार्तामें मधुसूदन सरस्वतीका दो स्थानों पर उल्लेख प्राप्त होता हैं -

(वार्ताप्रसंग २९ मो) पाछें आप श्रीआचार्यजीमहाप्रभु काशीतें प्रयाग आये

तहाँ आपने ७ दिन निवास करि श्रीभागवतको पारायण करि तहां मधुसूदनसरस्वती दंडी बड़े भारी विद्वान् हते। वे हते तो मायावादी, परंतु भगवद्भक्तिके अनुरागी हते, विननें गीताजीकी व्याख्या करी हती ताके ऊपर मंगलाचरणको एक श्लोक श्रीभगवानपरको कियो भयो आपकों दिखायो सो श्लोकः-

बंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात् ।।

पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्

कृष्णात्परं किमपि तत्वमहं न जाने ॥१ ॥

यह श्लोक देखतें ही आप श्रीआचार्यजी बडे प्रसन्न भये पाछें वा मधुसूदनसरस्वतीनें आपनों कियो भयो भक्तिरसायन ग्रन्थ हु आपकूं दिखायो तामेंके विषयमें किंचित् संभाषण भये पीछे आप बोहोत प्रसन्न भये । तहांते आगे आप व्रजके आडी पधारे ॥

तथा दूसरा उल्लेख

(वार्ताप्रसंग २९ मो):..........वहाँ श्रीगुसाँईजीको उपनयन करे पीछें मधुसूदनसरस्वती स्वामीके पास विद्या पढाई । ता पाछे आप श्रीआचार्यजीमहाप्रभु देवर्षिगाममें १५ वर्ष ताँई बिराजे ।.........

(मुंबईसे प्रकाशित निज वार्ता)

मूल प्राचीन निजवार्तामें उक्त प्रसंग प्राप्त नहीं होते. किंतु प्राचीन घरुवार्तामें माधव सरस्वतीका उल्लेख अवश्य प्राप्त होता है जो इन्हीं मधुसूदन सरस्वतीके गुरु थे. महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्यने स्थाई निवास हेतु अड़ैल ग्रामका चयन इन्हीं माधव सरस्वतीके सुझाव पर किया था.

(वार्ता १ ली) :.......तापाछें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी काशी आये तहाँ आवतें मायावादीननें एक पत्र दियो, ताको उत्तर तुरतही आपनें दियो । तब विननें कही जो उत्तर ठीक न भयो, तब आपके संग जो माधवसरस्वती हते तिननें कही जो यहाँ मायावादीकी दुर्बुद्धि भइ हे । तातें आप इनतें बोलो मति । पाछें आप श्रीआचार्यजीमहाप्रभु अड़ैल

आय बसे...

(प्राचीन घरु वार्ता)

अतः संभव है कि श्रीगोपीनाथजी तथा विट्ठलनाथजीका विद्याध्ययन माधव सरस्वतीजीके पास अड़ैलमें हुआ हो तथा श्रीमधुसूदन सरस्वती उनके वरिष्ठ सहपाठी रहे हों. मधुसूदन सरस्वतीका शिष्यों सहित अड़ैलमें निवास कई अन्य स्रोतों द्वारा भी ज्ञात है. देवर्षि कालानाथ शास्त्री इस विषयमें कहते हैं...

"वैसे मधुसूदन सरस्वतीका सम्पर्क वल्लभाचार्य परिवारसे भी था, अन्य वैष्णवाचार्योंसे भी, यह प्रसिद्ध है। इस दृष्टिसे इस रुचिर और विशाल काव्यमें सभी सम्प्रदायोंकी मान्यताके आलोकमें बाल और किशोर कृष्णकी लीलाओंका सुमधुर वर्णन और माधुर्यलक्षणा भक्तिका मिठास पाया जा सकता है जो सभी तरहके भक्तोंको भावविभोर कर सकता है, केवल चैतन्य सम्प्रदायके ही नहीं। कुछ स्थानों पर विठ्ठल शब्दका प्रयोग भी मिलता है जो वल्लभाचार्यके पुत्र विठ्ठलनाथजीकी ओर भी परोक्ष संकेत हो सकता है जिनका साक्षात्कार इन्होंने प्रयागके निकट अडैल ग्राममें किया होगा.."

(पुरोवाक् -आनंद मंदाकिनी, डॉ सुनीता शर्मा)

मधुसूदन सरस्वतीके विषयमें उल्लेख करते हुए डॉक्टर सुनीता शर्मा लिखतीं हैं

"'कमल-नयन' या मधुसूदनके विषयमें एक किंवदन्ती है कि इन्होंने कथा-साहित्य एवं व्याकरण विषयका अध्ययन अपने पितासे किया था। बाल्यकालमें 8- 10 वर्षकी आयुमें ही संस्कृत कविता करनेकी इनमें अद्भुत क्षमता थी। एक बार चन्द्रद्वीप (बरसाल)के राजा कन्दर्प नारायण सिंहके पास ये अपने पिता पुरंदराचार्यके साथ वार्षिक कर रूपमें आमोंकी भरी अनेक नौकाएँ लेकर गये, किन्तु वहाँ इनके पिताके साथ किये गये राजाके अनुचित व्यवहारसे मधुसूदन खिन्न हुए और विरक्त हो गये। घर आकर माता-पिताकी आज्ञा लेकर वेदान्त एवं मीमांसाके अध्ययनके लिए वाराणसी

चले गये। वहाँके प्रमुख मीमांसक माधव सरस्वती तथा श्रीरामतीर्थसे आपने वेदान्तका अध्ययन किया।

डॉ. बलदेव उपाध्यायने इनके जीवनके अन्य प्रकरणों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि नवदीपमें मधुसूदनने 'हरिराम तर्कवागीश'से न्यायका गम्भीर अध्ययन किया था, न्यायके विद्वान् गदाधर भट्टाचार्य उनके सह अध्यायी थे। वे भी न्यायके साङ्गोपाङ्ग अध्ययनके लिए काशी गये थे। काशीमें इन्होंने 'विश्वेश्वर सरस्वती'से अद्वैत वेदान्तका प्रगाढ़ अनुशीलन किया और संन्यासकी दीक्षा ग्रहण की। मधुसूदन- सरस्वती अपने गुरुको शङ्कराचार्यका नूतन अवतार मानते थे, जिसका उल्लेख उन्होंने 'सिद्धान्त बिन्दु'के मंगलश्लोकमें किया है।'

संन्यास लेनेके बाद 'कमलनयन' मधुसूदन सरस्वतीके नामसे विख्यात हुए और अपने गुरु विश्वेश्वर सरस्वतीके साथ चौसष्टी घाट पर गोपालमठमें रहने लगे। इन्होंने अपने जीवनका परवर्ती भाग हरिद्वारमें व्यतीत किया। वे अपने शिष्योंके साथ यमुनाके किनारे इलाहाबादमें झोंपड़ी बनाकर भी रहे, जिसका प्राचीन नाम अलर्कपुर है और यह अब 'अड़ैल' नामसे या 'मैनी स्टेशन'के नामसे प्रसिद्ध है। अलर्कपुरमें संत माधव भट्ट जो निम्बार्क सम्प्रदायके थे, जिनके स्थानमें महाप्रभु वल्लभाचार्य सपरिवार चार दशक तक रहे, वहीं पर मधुसूदन सरस्वतीजी भी वल्लभाचार्यके सुपुत्रद्वय गोपीनाथजी एवं विठ्ठलनाथजीको शास्त्राध्ययन कराते थे। बादमें सरस्वतीसे इन्होंने काशीमें भी अध्ययन किया। अतः लगता है, सरस्वतीजीका समय वल्लभचार्य एवं चैतन्य महाप्रभुके समकालीन ही रहा होगा।"

(भूमिका,आनंद मंदाकिनी, डॉ सुनीता शर्मा)

श्रीमधुसूदन सरस्वती अद्वैतवादके प्रचंड समर्थक थे. सैद्धांतिक विषयमें श्रीवल्लभके "साकार ब्रह्मवादका" खंडन करनेके बाद भी श्रीवल्लभकी भक्तिकी स्तुति करनेको वे बाध्य हुए. श्रीमहाप्रभुजीकी स्तुति करते मधुसूदन सरस्वती कहते हैं **"यः श्रीवल्लभहृदये सदयः सम्यग् विराजते नूनं सहि कृष्णो भावात्मनि वसतु मे मानसे**

नित्यं.

सदोद्धर्ता स्वेषां परमरुचिकर्ता हरिगुणे विकर्ता चित्तस्य स्वगुणगणरोमाञ्चनिचयैः पराकर्ता प्रायो निजनिखिलदोषाश्रयधियां स भर्ता मे नित्यो जयति सततं विट्ठलहरिः”:

(आनन्दमन्दाकिनी १७६, १७७)

अतः मूल रूपसे बंगदेशमें जन्मे मधुसूदन सरस्वती जब शंकर परंपरामें सन्यास दीक्षा ग्रहण करनेवाले, बंगदेशके महाभक्त श्रीकृष्णचैतन्य भारती नामसे शांकर संप्रदायमें प्रसिद्ध “श्रीचैतन्य महाप्रभुका” कहीं भी उल्लेख नहीं करते तथा मध्वसंप्रदायके आचार्य व्यासतीर्थजी द्वारा रचित, द्वैतवादको पुष्ट करने वाले न्यायामृतग्रंथका खंडन करने हेतु अद्वैतसिद्धि नामक ग्रंथ लिखते हैं ,वे मधुसूदन सरस्वती जब महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य एवं श्रीविट्ठलनाथजीकी प्रत्यक्ष स्तुति करते हैं तब यह मानना ही पड़ता है कि श्रीवल्लभसे इनका काफी निकटतासे परिचय रहा होगा तथा श्रीमहाप्रभुजीके प्रेममय भक्तिमार्ग एवं सेवा आदिके सिद्धांतसे मधुसूदन सरस्वती अतिशय प्रभावित रहे होंगे.

1519 ई. :- अष्टछाप कवि कृष्णदासजीको ब्रह्मसंबंध दीक्षा देना एवं पूरणमल क्षत्रिय द्वारा बनवाए गए श्रीनाथजीके मंदिरका पूर्ण होना. इस उपलक्ष्यमें श्रीवल्लभ द्वारा कृष्णभट्टको आचार्य करके गोवर्धनमें यज्ञ करना तथा माधवेंद्र पुरीको शिष्यों सहित श्रीनाथजीकी सेवामें नियुक्त करना एवं कृष्णदासजीको मंदिरका अधिकारी नियुक्त करना और सूरदासजी तथा कुंभनदासजीको कीर्तन सेवामें नियुक्त करना. श्रीनाथजी द्वारा गायें प्रिय होनेकी बात कहने पर श्रीनाथजीको गायें भेंट करना तथा गोपाल नाम रखना.

(84 वैष्णववार्ता , वल्लभदिग्विजय, प्राचीन निजवार्ता एवं घरुवार्ता, प्राचीन अष्टसखानकी वार्ता, श्रीनाथजीकी प्राकट्य वार्ता)

1520 ई. :- परमानंददासका महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजीका शिष्य होना.

(84 वैष्णववार्ता, प्राचीन अष्टसखानकी वार्ता तथा वल्लभदिग्विजयके आधार पर निर्धारित)

1523 ई. :- संवत 1580 चैत्र शुक्ल नवमीके दिन काशीमें श्रीविट्ठलनाथजीका यज्ञोपवीत संस्कार तथा माधव सरस्वती एवं उनके शिष्य मधुसूदन सरस्वतीसे विद्या अध्ययन.

(वल्लभ दिग्विजय, संप्रदाय कल्पद्रुम, कण्ठमणि शास्त्री रचित कांकरोली का इतिहास)

1523/1525 ई. :- महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी द्वारा अड़ैल ग्राममें चतुः श्लोकी ग्रंथकी रचना

(पुष्टिविधानम परिचय सहित)

1525 ई. :- महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य जी द्वारा आगराके निकट विष्णुदास छीपाके लिए सेवाफल ग्रंथकी रचना.

वाराणसी में 15 वर्ष की अवस्थामें श्रीगोपीनाथजी प्रभुचरणका पायम्मागारूजीसे विवाह.

(पुष्टिविधानम परिचय सहित, संप्रदाय कल्पद्रुम)

1526 ई. :- गंगासागरमें श्रीमहाप्रभुजीको स्वधाम गमनकी प्रथम आज्ञा तथा सुबोधिनी दशम स्कंधका लेखन प्रारम्भ.

(84 वैष्णववार्ताकी कृष्णदासीकी वार्ता तथा वल्लभदिग्विजयके आधार पर निर्धारित)

1529-30 ई. :- मधुवनमें तृतीय आज्ञाके पश्चात् महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी द्वारा अंतःकरण प्रबोध ग्रंथकी रचना. माधवेंद्र पुरी द्वारा श्रीमहाप्रभु जीको सन्यास दीक्षा देना तथा 40 दिनोंके संन्यासके पश्चात श्रीमहाप्रभुजी द्वारा आसुर व्यामोह लीला करना.

(84 वैष्णववार्ता , वल्लभदिग्विजय, प्राचीन निजवार्ता एवं घरुवार्ता)

1531-32 ई. :- बागरोदी विश्वनाथभट्टजीकी पुत्री श्रीरुक्मणिके संग गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी प्रभुचरणका विवाह.

(84 वैष्णववार्तामें कृष्णदासकी वार्ता, संप्रदाय कल्पद्रुम)

1533 ईस्वी :- श्रीनाथजीकी सेवा 14 वर्ष पर्यंत करनेके बाद श्रीमाधवेंद्र पुरीका चंदन यात्रा हेतु प्रस्थान तथा हिमगोपाल स्वामीमें चंदन समर्पित करना. (चित्र 13)

(श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्ता)

1535-1536 ईस्वी :- श्रीरुक्मिणी बहूजीका द्विरागमन.

(कांकरोली का इतिहास: कण्ठमणि शास्त्री)

1538 ई. :- काशीमें श्रीगोपीनाथजी प्रभुचरण द्वारा वैशाख शुक्ल पंचमीके दिन, देवीदास उपाध्यायको तीर्थ पुरोहितके रूपमें वृत्तिपत्र प्रदान करना (चित्र 14). तदनंतर श्रीगोपिनाथजी लगभग बीस दिवसमें जगन्नाथ पुरी पधारे.

पुरी पहुंचकर श्रीगोपीनाथजी प्रभुचरण द्वारा कृष्ण सेवक गुच्छिकारको तीर्थ पुरोहितके रूपमें वृत्तिपत्र प्रदान करना (चित्र 3), वैशाख वदि 30, शक संवत् 1460.

इसी बीच अड़ैलमें श्रीविट्ठलनाथजीकी पुत्री शोभा बेटीजीका प्राकट्य **(-संप्रदाय कल्पद्रुम)**

(श्रीगोपीनाथजी द्वारा प्रदत्त वृत्तिपत्र, मदाला पणजी, संप्रदाय कल्पद्रुम)

1540 ई. :- कार्तिक शुक्ल द्वादशी श्रीविठ्ठलनाथ जी प्रभुचरणके ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरिधरजीका प्राकट्य.

(संप्रदाय कल्पद्रुम)

1541 ई. :- श्रीगोपीनाथजी प्रभुचरणकी पुत्री श्रीसत्यभामका प्राकट्य.

(संप्रदाय कल्पद्रुम)

1542 ई. :- मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी संवत् 1599 विक्रमी, श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरणके पुत्र श्रीगोविन्दरायजीका प्राकट्य.

(संप्रदाय कल्पद्रुम)

1543 ई. :- संवत् 1600 विक्रमी भाद्रपद कृष्णमें गोस्वामी श्रीविठ्ठलनाथजी द्वारा अपनी माताश्री सहित व्रजमंडलकी चौरासी कोस यात्रा तथा उजागर शर्माको वृत्ति पत्र प्रदान करना- **“स्वस्ति श्रीमद्विठ्ठलदीक्षितानां मथुराक्षेत्रे तीर्थपुरोहित उजागरशर्मा माथुरोऽस्ति संवत् 1600”.**

तदनंतर श्रीविठ्ठलनाथजी द्वारा गुजरात यात्रा हेतु प्रस्थान. यात्राके मध्य द्वारिका पहुंचने पर द्वारकाधीशजीकी सेवा व्यवस्था एवं पद्धतिका निर्धारण. (चित्र 15)

1544 ई. :- अड़ैलमें श्रीगोपीनाथजी प्रभुचरणकी पुत्री श्रीलक्ष्मीका प्राकट्य. तथा गोकुलमें श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरणके ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरिधरजीका चौल कर्म. श्रीविठ्ठलनाथजीकी पुत्री कमला बेटीजीका प्राकट्य.

(संप्रदाय कल्पद्रुम)

1546 ई. :- श्रीविठ्ठलनाथजीकी पुत्री देवका बेटीजीका प्राकट्य चैत्र कृष्ण षष्ठी संवत् 1603 विक्रमी.

(संप्रदाय कल्पद्रुम)

1548 ई. :- श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरणके ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरिधरजीका काशीमें उपनयन संस्कार, चैत्र शुक्ल पंचमी,संवत् 1605 विक्रमी.

(संप्रदाय कल्पद्रुम)

1549 ई. :- श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरणके पुत्र श्रीबालकृष्णजीका प्राकट्य, आषाढ़ कृष्ण त्रयोदशी संवत् 1606 विक्रमी.

(संप्रदाय कल्पद्रुम)

1551 ई. :- श्रीगोपीनाथजी प्रभुचरणके पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजीका प्राकट्य. श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरणके पुत्र श्रीगोविन्दरायजीका गोकुलमें उपनयन संस्कार(चैत्र) तथा चतुर्थ पुत्र श्रीगोकुलनाथजीका प्राकट्य (मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी).

(संप्रदाय कल्पद्रुम)

1554 ई. :- श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरणके पुत्र श्रीरघुनाथजीका प्राकट्य,कार्तिक शुक्ल द्वादशी संवत् 1611 विक्रमी .

(संप्रदाय कल्पद्रुम)

1556 ई. :- श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरणकी पुत्री श्रीयमुनाबेटीजीका प्राकट्य, चैत्र शुक्ल षष्ठी संवत् 1613 विक्रमी तथा गोकुलमें श्रीबालकृष्णजीका उपनयन संस्कार. तदनंतर श्रीविठ्ठलनाथजी द्वारा द्वितीय गुजरात यात्रा हेतु प्रस्थान.

(संप्रदाय कल्पद्रुम, कांकरोली का इतिहास)

1558 ई. :- माघ मासमें श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरणकी पुरी यात्रा तथा तीर्थ पुरोहित कृष्णसेवक गुच्छिकारके वंशजको वृत्तिपत्र प्रदान करना (चित्र 16). तदनंतर अड़ैलमें श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरणके षष्ठ पुत्र श्रीयदुनाथजीका प्राकट्य , चैत्र शुक्ल षष्ठी संवत् 1615 विक्रमी.

(संप्रदाय कल्पद्रुम,)

1558-1559 ईस्वी :- श्रीमहाप्रभुजीकी आसुर व्यामोह लीलाके लगभग 30 वर्ष बाद श्रीकृष्णदास अधिकारी द्वारा, श्रीविठ्ठलनाथजीकी आज्ञासे, श्रीनाथजीका देवद्रव्य चोरी करने वाले बंगाली पुजारियोंको सेवा से हटाना. इसी समय नारायणदास द्वारा प्रकटित तथा श्रीगोपीनाथजी द्वारा पाट बैठाए गए श्रीमदनमोहनजीका स्वरूप , गोस्वामी श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरण द्वारा बंगाली पुजारियोंको प्रदान कर दिया गया जिनकी सेवा सनातन गोस्वामीकी अध्यक्षतामें बंगालियोंने की. (चित्र 17)

(अकबर, टोडरमल, बीरबल तथा श्रीसनातन गोस्वामीके सहअस्तित्व द्वारा सिद्ध)

1559 ई. :- श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरणके पुत्र श्रीगोकुलनाथजीका गोकुलमें गंगादशहराके दिन उपनयन संस्कार. तदनंतर रथयात्राके समय गोस्वामी श्रीविठ्ठलनाथजी द्वारा जगन्नाथ पुरी तथा गौड़ देश की यात्रा.

(संप्रदाय कल्पद्रुम)

1561-62 ई. :- श्रीगोपीनाथजी द्वारा यथार्थ प्रस्थान तथा अकबर द्वारा प्रयाग पर आक्रमणके कारण श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरण द्वारा अड़ैल ग्रामका त्याग तथा राजा रामचंद्र बघेल द्वारा शासित बांधवगढ़ पश्चात रानी दुर्गावतीके नगर गढ़ा को प्रस्थान. रानी दुर्गावती द्वारा गोस्वामी श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरणके लिए मथुरामें विशाल भवन निर्माण जो कालांतरमें सतघरा नाम से प्रचलित हुआ. तदनंतर श्रीकृष्ण भट्टकी पुत्री पद्मावतजी संग श्रीविठ्ठलनाथजीका द्वितीय विवाह, तत्पश्चात तृतीय गुजरात यात्रा हेतु गढ़ासे प्रस्थान.

(कांकरोली का इतिहास)

1563 ई. :- जगन्नाथपुरीमें श्रीगोपिनाथजीका लीला प्रवेश. श्रीकृष्णदास अधिकारीजी द्वारा गोस्वामी श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरणका श्रीनाथजीके मंदिरमें प्रवेश निषेध करना तथा गोस्वामी श्रीविठ्ठलनाथजी द्वारा छः माह तक चन्द्रसरोवर पर निवास एवं विरहावस्थामें “नव विज्ञप्ति” का प्राकट्य.

(संप्रदाय कल्पद्रुम, चौरासी वैष्णव वार्ता)

1566 ई. :- मथुरासे गुजरात एवं दक्षिण यात्रा हेतु प्रस्थान. श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरण द्वारा इस चतुर्थ गुजरात यात्रामें असारवा पधारने पर भायला कोठारीके मूक जामाता गोपालदासजी पर कृपा करना तथा वल्लभाख्यान ग्रंथका प्राकट्य. श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरणकी इसी यात्राके समय श्रीगिरिधरजीनें श्रीनाथजीको फाल्गुन कृष्ण सप्तमी संवत् 1623 विक्रमी के दिन (ईस्वी सन् 1567 February- april) जतीपुरासे अपने निज गृह सतघरा मथुरामें पधराया. श्रीविठ्ठलनाथजीके पुनरागमनसे एक दिवस पूर्व (वैशाख शुक्ल त्रयोदशी)तक श्रीनाथजी सतघरा मथुरामें विराजे.

(श्रीनाथजीकी प्राकट्य वार्ता, कांकरोली का इतिहास)

1571 ई. :- गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी प्रभुचरण द्वारा परिवार सहित गोकुल आगमन. गोकुलमें श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरणके सप्तम पुत्र श्रीघनश्यामजीका प्राकट्य, मार्गशीर्ष कृष्ण त्रयोदशी संवत् 1628 विक्रमी.

मधुसूदनभट्ट-कृत 'वंशावली' में इस विषय पर इस प्रकार प्रकाश पड़ता है-

"गढ़ायां पूर्वमवसन् विट्ठलेश्वरदीक्षिताः,

तेऽपि प्रयागमाजग्मुः तत्रोपद्रव सम्भवे ।।१।।

यमुनातीरमाश्रित्य तत्र वासं प्रचक्रिरे,

श्रीकृष्णसेवानिरताः सोमयागविधायिनः ।।२।।

बहून् संवत्सरान् तत्र निवसन् परया मुदा,

अथ तेषां व्रजे वासं कर्तुमिच्छाभवत्किल ।।३।।

गोवर्द्धनो गिरिर्यत्र श्रीमद् वृन्दावनं तथा,

मथुरापि हरिर्यत्र नित्यं सन्निहितो विभुः ।।४।।

तत आगत्य मथुरां कुटुम्बसहिता इह,

कंचित्कालं मुदावात्सुर्यमुनाहरि-सेवनाः ।।५।।

मथुरा नगरे विलोक्य वासं, यवनादिप्रसरेण भूरिबाधम्;

अथ विठ्ठलदीक्षिता विविक्तं, स्थलमात्मस्थितये व्यचारयंस्ते ।।६।।

कदाचित् भूमहेन्द्रेण परमात्मविनिर्णये,

पृष्टास्तदीय-संन्देहानपाकुर्वन् सदुक्तिभिः ।।७।।

प्रसन्नेनाथ तेनोक्ताः किमपि प्रार्थ्यतामितः,

तस्याग्रहमथालोक्य हृदि सम्यक् विचार्य च ।।८।।

आत्मनः सुखवासार्थं महावनसमीपतः,

यमुनातीरमाश्रित्य स्थलं रम्यमयाचिषुः ।।९।।

अथ स्वाधिकृतेर्भूमेः पत्रं संलेख्य भूपतिः,

स्वनाममुद्रासहितं दीक्षितेभ्यस्तदार्पयत् ।।१०।।

ततो मौहूर्तिकादिष्टे मुहूर्तविधिपूर्वकं,

ग्रामं गोकुलनामानं स्थले तत्र न्यवासयन् ।।११।।

अब्देऽष्टनेत्राङ्गमही-प्रमाणे (सं. १६२८) तपस्य मासस्य तमिस्रपक्षे;

दिने दिनेशस्य शुभे मुहुर्ते श्रीगोकुल ग्राम निवास आसीत् ।।१२।।

वृतान्तमिममाकर्ण्य सजातीयाः द्विजोत्तमाः,

कुटुम्बसहितास्तत्र वासार्थे समुपागमन्।।१३।।

ब्राह्मणाः, क्षत्रिया, वैश्याः, शूद्राश्च बहवस्ततः,

स्वं स्वं कुटुम्बमादाय निवासोत्काः समाययुः ।।१४।।

समागतेभ्यः सर्वेभ्यो निवासाय यथायथम्,

स्थानाने दापयामासुः विट्ठलेश्वरदीक्षिताः ।।१५।।

अर्थ: *श्रीविठ्ठलेश्वरदीक्षितजी कुछ समय तक गढ़ामें रहने के बाद (यात्रा करते हुए सं. १६२१ के लगभग) प्रयाग आये। वहाँ यवनों का उपद्रव होने पर यमुना-तीर पर(सम्भवतः अड़ेलमें) उन्होंने निवास किया। बहुत समय तक (सं. १६२१ से २३ के लगभग) अड़ेलमें निवास करने के बाद उनकी व्रजमें रहने की इच्छा हुई जहाँ श्रीगिरिराजजी, वृन्दावन और यमुनाजीका सामीप्य हो। इस विचार से वे अपने कुटुम्बको लाकर मथुरामें रहने लगे। कुछ समय बाद वहाँ भी मुसलमानोंका अत्याचार शुरू हो गया, जिसके सबब धार्मिक मर्यादा-परिपालनमें बाधा आने लगी। अतः श्रीगुसाईंजीने मथुरा छोड़कर किसी शान्तिमय स्थानकी खोज शुरू की।*

इसी समय प्रसंगवश श्रीगुसाईंजीका अकबर बादशाहसे परिचय हुआ। बादशाह इनके वार्तालाप और धार्मिक आचरणसे अत्यंत प्रभावित हुआ, जिससे उसने इनकी इच्छा जानकर महावनके समीपकी भूमि स्थायी निवासके लिये प्रदान कर दी।

बादशाह से इजाजत मिल जाने पर श्रीगुसाईंजी ने सं. १६२८ फाल्गुन मास में शुभ मुहूर्त देखकर गोकुल-ग्राम की स्थापना की, और सजातीय तथा इतर समुदाय को यथायोग्य निवासार्थ भूमि दी। श्रीविठ्ठलेश्वरदीक्षितजीके गोकुलमें आ बसनेके कारण सब लोग वहीं आकर बस गये।

-(मधुसूदनभट्ट कृत 'वंशावली', संवत् १७१७)

वंशावली ग्रंथके उक्त कथन की पुष्टि बादशाही फरमानोंसे भी होती है, जो इसी समयके आसपास प्राप्त हुए हैं।

(संप्रदाय कल्पद्रुम, मधुसूदनभट्ट कृत वंशावली)

1571 ई. :- गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी प्रभुचरण द्वारा पांचवीं गुजरात यात्रा हेतु गोकुलसे प्रस्थान.

(कांकरोली का इतिहास)

1577 ई. :- मुग़ल हाकिमों द्वारा परेशान किये जाने की जानकारी होने पर बादशाह अकबर द्वारा गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी प्रभुचरणके पक्षमें समस्त करोंसे मुक्ति का फरमान. कालांतरमें और भी कई फरमान बादशाह अकबर तथा हमीदा बानो बेगमकी ओर से गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी प्रभुचरण हेतु जारी किए गए तथा गोकुल एवं जतीपुराका स्वामित्व पूर्ण रूपसे गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी प्रभुचरणको प्रदान कर दिया गया. **(स्रोत: शाही मुग़ल फरमान)**

1581 ई. :- गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी प्रभुचरण द्वारा छठवीं गुजरात यात्रा हेतु गोकुलसे प्रस्थान.

(कांकरोली का इतिहास)

1585/87 ई. :- गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी प्रभुचरण द्वारा श्रीगिरिराजकी कंदरामें सदेह नित्यलीलामें पधारना. संप्रदाय कल्पद्रुमके अनुसार श्रीगुसाईंजी फाल्गुन शुक्ल एकादशी, संवत् 1644 विक्रमीमें (1587ई.) सदेह नित्यीलामें पधारे.

(कांकरोली का इतिहास, संप्रदाय कल्पद्रुम)

संदर्भग्रंथ सूची

- अवतारवादावली – दशदिगंतविजयी गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमजी
- कठोपनिषद
- श्वेताश्वर उपनिषद
- छांदोग्य उपनिषद
- बृहदारण्यक उपनिषद
- तैत्तिरीय उपनिषद
- महानारायण उपनिषद
- केनोपनिषद
- मुण्डकोपनिषद
- कठोपनिषद
- रुद्र हृदयोपनिषद
- योगकुंडलिनी उपनिषद
- नृसिंहतापनीय उपनिषद
- गोपालतापनी उपनिषद
- ध्यानबिंदु उपनिषद
- १०८ उपनिषद - श्रीराम शर्मा आचार्य
- यजुर्वेद संहिता - श्रीराम शर्मा आचार्य
- अथर्ववेद संहिता- श्रीराम शर्मा आचार्य
- ऋग्वेद संहिता
- शतपथ ब्राह्मण
- गोपथ ब्राह्मण
- ऐतरेय ब्राह्मण
- ऐतरेय आरण्यक
- निरुक्त (२.१.२)
- बौधायन धर्मसूत्र (२.५.२४)
- तांड्य महा ब्राह्मण
- गोभिल गृह्यसूत्र (३.४.२८)
- द्राह्यायण गृह्यसूत्र (३.१.२५)
- मानव गृह्यसूत्र
- वाल्मीकि रामायण
- महाभारत
- मनुस्मृति
- याज्ञवल्क्य स्मृति
- वराह पुराण
- स्कंद पुराण पांडुरंग माहात्म्य, प्रभास क्षेत्र माहात्म्य
- श्रीमद् भागवत महापुराण
- विष्णु धर्मोत्तर पुराण
- शिव पुराण
- लिंग पुराण
- वायु पुराण
- वल्लभ दिग्विजय -गोस्वामी श्रीयदुनाथजी
- संप्रदाय प्रदीप - गदाधर भट्ट
- चाणक्य नीति
- अर्थशास्त्र :कौटिल्य (१४.३.४४ & १.६.४-१०)
- वृहत संहिता: वराहमिहिर
- अष्टाध्यायी: पाणिनी
- महाभाष्य पतंजलि
- हरिवंश महाभारत खिलभाग
- नयाधम्मकहा
- रायपसेनियसुत्त
- सुत्तनिपात महानिद्देश व्याख्या
- मिलिंद प्रश्न
- महाउम्मग जातक
- स्वामी हरिदास : जीवनी और वाणी प्रभुदयाल मित्तल
- श्रीहित हरिवंश गोस्वामी संप्रदाय और साहित्य- ललिताचरण गोस्वामी
- श्री निंबार्क वेदांत- ललित कृष्ण गोस्वामी
- धर्मशास्त्र का इतिहास- पी. वी. काने

- Rādhā-Kṛṣṇa's Vedāntic Debut: Chronology & Rationalisation in the Nimbārka Sampradāya by Vijay Ramnarace
- Report of Archaeological Excavations at Harappa Carried Out by M.S.Vats Between 1920-21 & 1933-34
- History of vaishnavism - lectures by A.W. Entwistle and Prof Hans T. Bakker
- The archaeology of Hinduism - Dilip Chakrabarty
- Balarama: change and continuity in an early hindu cult - Lavanya Vemsani
- Braj lost and found: Charlotte Vaudeville
- The Govardhan myth in northern India: Charlotte Vaudeville
- Early Vaishnava imagery: Chaturvyuha and Variant forms - Doris Srinivasan
- The sculpture of India - Pramod Chandra
- Cults and shrines in early historical mathura - Upinder Singh
- Ancient Indian folk cults - Vasudev S. Agarwal
- Yaksha: cult and iconography - Ram nath Misra
- Vasudev krishna and mathura : Meenakshi Jain.
- Studies in Asian art and archaeology, continuation of studies in south asian culture; edited by Jan Fontein; Volume XXV; Sonya Rhie Quintanilla; HISTORY OF EARLY STONE SCULPTURE AT MATHURA, CA. 150 BCE-100 CE
- Epigraphia Indica
- Bhandarkar, D.R. "Hathi-Badi Brahmi Inscription at Nagari", in Epigraphia Indica, Vol. XXII.
- Buhler, G. 1883. "The Nanaghat Inscriptions", in Jas Burgess ed., Report on the Elura Cave Temples and the Brahmanical and Jaina Caves in Western India, Archaeological Survey of Western India, Vol. V.
- "Further Pabhosa Inscriptions", Epigraphia Indica, Vol. II, Archaeological Survey of India.
- Fleet, J.F. 1888. Inscriptions of the Early Guptas, Corpus Inscriptionum Indicarum.
- 1981. Inscriptions of the Early Guptas, revised by D.R. Bhandarkar, Corpus Inscriptionum Indicarum.
- Luders, Heinrich. A List of Brahmi Inscriptions from the Earliest Times to about 400 AD (with the exception of those of Asoka), Appendix, Epigraphia Indica, Vol. X, Archaeological Survey of India.
- "Seven Brahmi Inscriptions from Mathura and Its Vicinity", Epigraphia Indica, Vol. XXIV, Archaeological Survey of India.
- 1961. Mathura Inscriptions. Unpublished papers edited by Klaus L. Janert,

Gottingen, Vandenhoeck & Ruprecht.

- Allan, John. 1936. Catalogue of the Coins of Ancient India, London, Printed by the Order of the Trustees.
- Cunningham, Alexander. 1891. Coins of Ancient India from the Earliest Times down to the Seventh Century A.D., B. Quaritch.
- Narain, A.K. 1973. "The Two Hindu Divinities on the Coins of Agathocles from Ai Khanum", in The Journal of the Numismatic Society of India, 35.
- 1989. "Ancient Mathura and the Numismatic Material", in Doris Meth Srinivasan eds., Mathura: The Cultural Heritage, Manohar.
- Wilson, H.H. 1841. Ariana Antiqua. A Descriptive Account of the Antiquities and Coins of Afghanistan, London.
- Agrawala, Vasudeva S. 1951. A Catalogue of the Brahmanical Images in Mathura Art, UP Historical Society, Lucknow.